॥ श्री स्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षणश्रेणी की पाठ्यपुस्तक

अक्षरब्रह्म

श्री गुणातीतानंद स्वामी

लेखक

साधु ईश्वरचरणदास

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद - 380 004.

AKSHARBRAMA SHRI GUNATITANAND SWAMI (Hindi Edition)
(Brief life-story of Aksharbrahma Gunatitanand Swami)

By Sadhu Ishwarcharandas

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:

Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:

SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

1st Edition:

November 2002 Copies:2000

Warning:

ISBN: 81-7526-213-3

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.)
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे 24, अक्षरधाम सेतु,
यमुना किनारा, नई दिल्ली - 110 092.

प्रेरणामूर्ति : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

प्रथम संस्करण : नवम्बर 2002

प्रति : 2,000

मूल्य : रु. 15.00

मुद्रक एवं प्रकाशक :

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद-380 004.

कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृत्ति तीव्र गति से विस्तृत होती जा रही है। इस प्रवृत्ति से जुड़े युवाओं की आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान स्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन का आयोजन किया है।

इन पुस्तकों द्वारा बालकों और युवाओं को व्यवस्थित, सुगम तथा सरल ढंग से सत्संग का शुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान स्वामिनारायण द्वारा उद्बोधित आदर्शों के पालन व प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रकार की अनेक सत्संग प्रवृत्तियों में संलग्न है कि जिससे विश्व में हमारी महान हिन्दू संस्कृति का प्रचार व प्रसार हो।

भगवान स्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो तथा सभी मुमुक्षुओं को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो इसी हेतु इन पुस्तकों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशन किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के आधार पर सत्संग शिक्षण परीक्षाएँ आयोजित की जाएँगी साथ ही बालकों-युवकों को प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पुस्तकों को तैयार करने में ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे, किशोरभाई दवे तथा अन्य सहयोगियों ने भारी परिश्रम उठाया है, उनको हमारे आशीर्वाद हैं।

अत्यंत स्नेहपूर्वक
जय श्री स्वामिनारायण।
शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी
(प्रमुखस्वामी महाराज)

निवेदन

श्रीजी महाराज ने वचनामृत में कहा है : 'भगवान जीव के कल्याण के लिए जब मूर्ति धारण करते हैं, तब वे अपने अक्षरधाम एवं चैतन्य मूर्ति पार्षदों तता समस्त निजी ऐश्वर्यों के सहित ही पधारते हैं, ...अत: एवं भगवद भक्तों को यह समझ लेना चाहिए कि भगवान का स्वरूप अक्षरधाम सहित पृथ्वी पर विराजमान रहता है, और भगवान के भक्तों को दूसरे लोगों के सामने भी इसी प्रकार वार्ता करनी चाहिए।' (ग.प्र. 71)

अपने इन वचनों के अनुसार श्रीहरि अपने अक्षरधाम, स्वयं अक्षरब्रह्म सद्‌गुरु गुणातीतानंद स्वामी को अपने साथ इस ब्रह्मांड में लाए और मुमुक्षुजनों को समझाया कि अक्षरब्रह्म को मूर्तिमान आदर्शन बनाकर ब्रह्मरूप होकर पुरुषोत्तम नारायण की भक्ति करने का सिद्धान्त करना ही मनुष्य जीवन का ध्येय है।

श्रीजी महाराज के पाँचसौ परमहंसों में गुणातीतानंद स्वामी का जीवन अनन्य था। 'सब गुन पूरन, परम विवेकी, गुन को मान न आवे...' इस मुक्तानंद स्वामी रचित उक्ति को चरितार्थ करते हुए स्वामी के जीवन में हमें आदर्श संत एवं गुरु के दर्शन हुए बिना नहीं रहता।

श्रीहरि के सर्वोपरि स्वरूप का ज्ञान एवं पुरुषोत्तमपने की महिमा यथार्थ रूप में संप्रदाय में पहली बार स्वामी ने ही प्रसिद्ध की थी तथा श्रीजी महाराज के प्रकट होने का उद्देश्य भी सिद्धान्त-प्रवर्तन से सार्थ किया। श्रीजी महाराज सत्संग में सदा-सर्वदा प्रकट हैं, एवं अक्षरब्रह्म अर्थात ब्रह्मस्वरूप संत द्वारा आत्यंतिक कल्याण की गंगा बहाते रहते हैं, यह भी उन्होंने स्ववृत्तांत से सिद्ध किया।

इस पुस्तिका में मुख्यत: श्री हर्षदराय दवे लिखित 'अक्षरब्रह्म श्री गुणातीतानंद स्वामी' जीवन-चरित्र के ग्रंथ का आधार लिया गया है।

सत्संग शिक्षण परीक्षा के अभ्यास क्रम के भागरूप इस पुस्तिका की रचना की गई है। चतुर्थ परीक्षा 'सत्संग प्रवीण' के लिए यह आपके हाथ में रखते हुए हम अत्यन्त हर्षित हो रहे हैं।

श्रीजी महाराज, अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी तथा प्रकट गुरुहरि स्वामीश्री नारायणस्वरूपदासजी (प्रमुखस्वामी महाराज) को प्रसन्न करने के लिए आबालवृद्ध तथा जिज्ञासु इस अभ्यासक्रम का गहराई से अभ्यास करें, एवं परीक्षाओं में उच्च सफलता हासिल करें, वही अभ्यर्थना!

– **प्रयोजक**

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥



हम तो हैं स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए ।
हम तो हैं श्रीजी के युवक, लड़ेंगे श्रीजी के लिए ॥

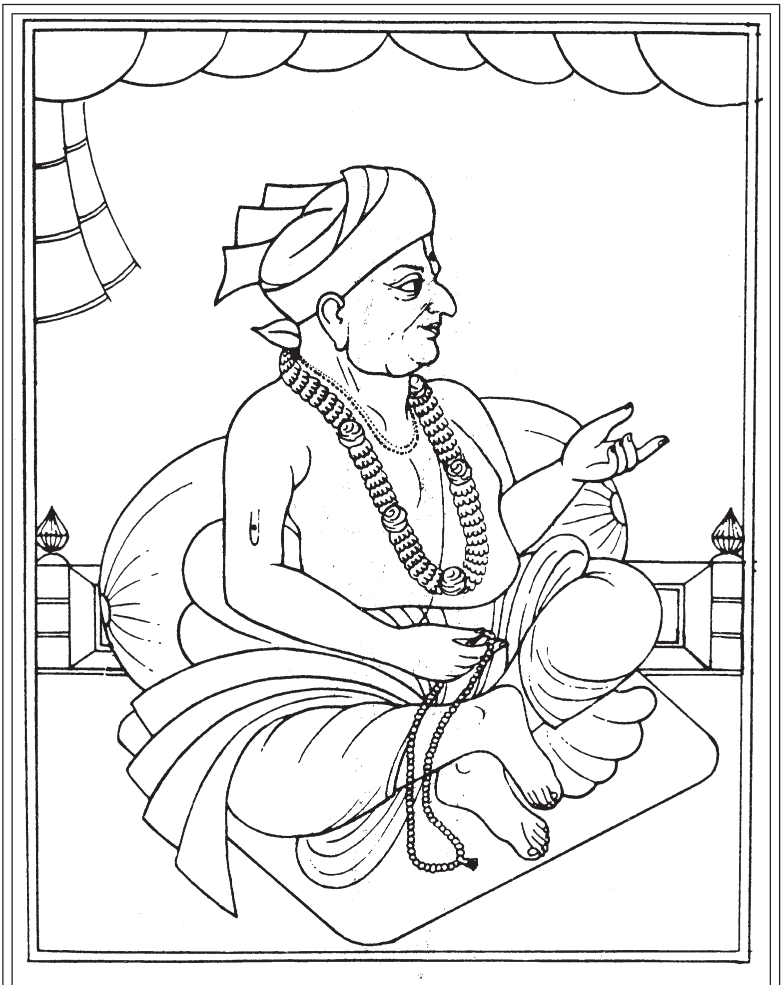
नही डरते नहीं करते, हमारी जान की परवाह ।
हमें है भय नहीं किससे, न हमको मौत की परवाह ॥

किया शुभ यज्ञ का आरंभ, हम बलिदान कर देंगे ।
हमारे अक्षरपुरुषोत्तम, गुणातीत गान गाएँगे ॥

हम तो हैं श्रीजी की संतान, स्थान है अक्षर में हमका ।
लगाई धर्मनिष्ठा की भभूत तो भय हमें किसका ? ॥

मिले हैं 'मोती' के स्वामी, उन्होंने बाँह ली थामी ।
प्रकट पुरुषोत्तम धामी, अक्षर ब्रह्म गुणातीत स्वामी ॥

क्रमिका



अक्षरब्रह्म सद्‌गुरु गुणातीतानंद स्वामी

1. प्राकट्य

भूमि सौराष्ट्र की पवित्र धरती को संतों की धरती कहते हैं। वहाँ उस समय आत्मानन्द स्वामी परिभ्रमण कर रहे थे। खास करके में जामनगर जिले में (हालार प्रदेश) लतीपुर गाँव में उनके कुछ भक्त रहते थे। स्वामी के आशीर्वाद से वल्लभजी जानी के घर पुत्र का जन्म हुआ, और सुखदेव दवे के घर पुत्री साकरबाई का जन्म हुआ। दोनों भक्त –परिवार आनंदविभोर हो गए। कुछ समय के बाद आत्मानन्द स्वामी की आज्ञा से भोलानाथ और साकरबाई का विवाह तय हुआ। विवाह के समय आत्मानन्द स्वामी भी पधारे थे।

उन्होंने अपनी देहलीला समाप्त करने से पहले अपने प्रमुख शिष्य रामानन्द स्वामी को अपने उत्तराधिकारी नियुक्त किया, और सभी भक्तों को उनकी आज्ञा में रहने का आदेश दिया। थोड़े ही दिन में आपने अपनी देहलीला समाप्त की।

माता-पिता के देहत्याग के बाद भोलानाथ और साकरबाई जामनगर जिले में ऊँड नदी के तट पर भादरा नामक गाँव में अपनी सुखी गृहस्थी बिताने लगे। भोलानाथ को भगवान शंकर के प्रति अधिक आस्था थी, जब कि साकरबाई पक्की कृष्णभक्त थीं। फिर भी दोनों एक दूसरों को सहयोग देते हुए अपने अपने इष्टदेव की भक्ति किया करते थे। किन्तु यह साधन-संपन्न परिवार में एक पुत्ररत्न की कमी थी। दंपती ने प्रभासक्षेत्र में जाकर महादेवजी को प्रसन्न करके अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिए प्रस्थान किया।

संघ के साथ भोलानाथ और साकरबाई साधना करने के लिए निकल पड़े। रास्ते में मेखाटींबी नामक गाँव में एक पटेल के घर रात्री-निवास किया। सं. 1837 चैत्र शुक्ला अष्टमी का वह दिन था।

पटेल ने यात्रिक संघ के साथ कुछ समय बिताया, तो भोलानाथ के साथ भी उनकी मैत्री बन गई। भोलानाथ के भीतर की व्यथा बह नीकली: 'भैया, मैं तो पुत्रप्राप्ति के हेतु ही प्रभासक्षेत्र में जाता हूँ। मेरा संकल्प सिद्ध होगा, तो प्रभु को चाहे जो कुछ मुझे प्रिय है, मैं अर्पण कर दूँगा!' भोलेनाथ की इस पुत्रेच्छा का पता चलने पर पटेल ने कहा, 'आत्मानन्द स्वामी मेरे गुरु

हैं। आप उनका स्मरण करेंगे तो अवश्य आपका संकल्प सिद्ध होगा, वे बड़े समर्थ एवं सिद्ध हैं!'

यह सुनते ही भोलानाथ के अंतर में उस समय की याद आई, जब अपने यज्ञोपवीत के प्रसंग पर आत्मानन्द स्वामी ने आशीर्वाद दिए थे। इसी स्मरण के साथ पति-पत्नी दोनों सो गए।

आत्मानन्द स्वामी ने साकरबाई को स्वप्न में दर्शन दिए। और आशीर्वाद देते हुए कहा, 'सरवार प्रदेश में (उत्तरप्रदेश) धर्मदेव के घर कल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान प्रकट होंगे और आज से बराबर चार वर्ष के बाद आपके वहाँ भगवान के धामरूप अक्षर स्वयं पुत्र के रूप में जन्म लेंगे। अत: अब आपको प्रभास जाने की आवश्यकता नहीं हैं।'

साकरबाई सहसा जाग गईं। उनके आनन्द की अवधि न रही ! क्या साक्षात् 'धामरूप अक्षर' मेरे वहाँ पुत्ररूप होकर आएँगे !! अब दोनों आनन्द के साथ घर लौटे! आत्मानन्द स्वामी के वचन में विश्वास रखकर दोनों सुखचैन से जीवनयापन करने लगे और वह शुभ दिन आ पहुँचा !

संवत् 1841 आश्वीन पूर्णिमा की उज्जवल रात्रि में भोलानाथ के घर साकरबाई द्वारा घामरूप अक्षर स्वयं बालरूप में प्रकट हुए। शरदोत्सव के अद्भुत अवसर पर इस शुभ समाचार सुनते ही भादरा की समग्र जनता के मन आनंदित हो उठे। सुबह होते ही स्नानादि क्रिया से निपटकर भोलानाथ ने याचकों को दान दिया। गाँव की स्त्रियां विभिन्न भेंट-सामग्री के साथ साकरबाई के आंगन में एकत्र हो गईं। बालक के दर्शन करके सब बधाई देने लगीं। पुत्र जन्म से भोलानाथ का घर तीर्थरूप बन गया !

भोलानाथ ने ज्योतिष को बुलाकर पुत्र के जन्माक्षर करवाये। कुण्डली में ग्रहों का उत्तम योग देखकर ज्योतिष ने कहा, 'भोलानाथ ! तुम्हारा यह पुत्र साक्षात् नारायण की विभूति है। यह खूब प्रतापी होगा, अनेक मुमुक्षुओं का वह कल्याण करेगा, बृहस्पति के समान वक्ता बनेगा और भागवत धर्म का प्रचार-प्रसार करेगा।'

रामानन्द स्वामी कुछ समय के बाद भ्रमण करते करते गाँव भादरा पधारे। भोलानाथ ने उनको पुत्र के जन्माक्षर दिखाकर उनका नामकरण विधि करने प्रार्थना की। स्वामी ने खूब आग्रहपूर्वक उनका नाम 'मूलजी' रखा,

और आशीर्वाद देते हुए कहा, 'यह बालक, आत्मानन्द स्वामी के आशीर्वाद के अनुसार सरवार देश में प्रकट हुए पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण के साक्षात् धामरूप अक्षर का अवतार है। और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान जरूर एक न एक दिन आपके घर अवश्य पधारेंगे।'

पुत्ररूपी ऐसे अनमोल रत्न की प्राप्ति होते ही माता-पिता अपने आपको धन्यभागी समझने लगे। साकरबा का मातृप्रेम उमड़ रहा था, इसके साथ उस बालक की दिव्य प्रतिभा का विचार करते उस पुत्र के प्रति हृदय में भक्ति भाव की ललक भी हो उठती थी! बालक मूलजी को देखते ही वे उनको खूब प्रेम से गले लगा लेते, उनको खेल खिलाते समय उनका हृदय आनंद से भर जाता था। चंद्र के समान कांतिमान बालक की तेजस्वी मुखाकृति देखकर सब उनके व्यक्तित्व की दिव्यता में खो जाते थे।

2. बालचरित्र

मूलजी जब चार वर्ष के हुए तब उन्होंने एकबार अपनी माँ के पास दूध माँगा। साकरबा ने कहा, 'बेटा! ठाकुरजी को भोग लगाकर देती हूँ'।

यह सुनकर मूलजी हँसने लगे, और बोले, 'माँ! माँ! ठाकुरजी तो मेरे हृदय में बिराजते हैं। मैं जब भोजन करता हूँ तो ठाकुरजी मेरे साथ भोजन करते हैं, और मैं जब सोता हूँ तो ठाकुरजी मेरे साथ सोते हैं। इसलिए मैं दूध पीऊँगा तो ठाकुरजी मेरे साथ दूध पीयेंगे।'

अपने बालक की ऐसी ज्ञानयुक्त और मधुर बातें सुनकर साकरबाई को बहुत आश्चर्य होता था। पुत्र की इच्छा पूर्ण करने हेतु माता ने दूध का कटोरा मूलजी के आगे रखा। मूलजी ने माँ के सामने देखते हुए हँसते हँसते दूध पी लिया। अचानक साकरबाई का ध्यान ठाकुरजी की मूर्ति की ओर गया, देखा तो ठाकुरजी की मूर्ति के मुख पर दूध की ही सफेद लकीर दिखाई दी! उनको मूलजी के वचन की सत्यता समझ में आ गई।

फाल्गुन शुक्ला दशवीं का दिन था। अचानक मूलजी ने अपनी माँ से कहा, 'माँ! 'माँ! आज तो मेरे प्रभु पुरुषोत्तमनारायण को अयोध्या में यज्ञोपवीत संस्कार दिया जा रहा है, इसलिए आप भी जनेऊ के गीत गाओ।'

अपने बेटे की ऐसी आश्चर्यकारक बातें सुनकर साकरबाई को अत्यंत

आनंद होता था। जब गाँव की स्त्रियाँ साकरबाई से नदी पर या गाँव में अपने घर मिलने चली आती तब वे उनको बताती थीं कि 'मेरा मूलजी तो ऐसी बातें करता है कि मानो कोई बड़ा पंडित न हो ! कई बार तो उनकी बातें मुझे समझ में भी नहीं आतीं ! फिर भी उनकी मीठी बातें सुनना मुझे बहुत अच्छा लगता हैं।'

•

समयान्तर से भोलानाथ और साकरबाई को दूसरे पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम रखा सुन्दरजी। मूलजी कई बार सुन्दरजी के साथ घंटों तक खेला करते, और कभी कभी कुछ अगम्य बातें भी कर लेते। एक बार मूलजी सुन्दरजी को पालने में झुला रहे थे। और थोड़ी थोड़ी देर के बाद पालना रुका कर सुन्दरजी के साथ बातें करते रहते थे। 'तुम सुन्दरजी से क्या बात करते हो?' माँ ने जब मूलजी से पूछा, तब मूलजी ने कहा, 'माँ, माँ ! मैं भी साधु बनूँगा और इस सुंदरजी को भी मेरे साथ साधु बनाऊँगा।'

माँ ने तो यह सुनते ही सुंदरजी को पालने से उठाकर गले लगा लिया और कहा, 'ना भैया ना, हमें साधु नहीं होना हैं, ऐसा अमंगल मत बोलना।' ऐसे प्रसंग पर मायिक भाव के कारण, माँ मूलजी को केवल स्थूल दृष्टि से देखते रह जाते !

•

छोटी उम्र होने पर भी मूलजी धीर गंभीर रहते थे। सांसारिक पदार्थ में अनासक्त रहते थे। खाना-पीना आदि लौकिक विषय में तो उनकी रुचि ही नहीं थी। वे हमेशा भगवद्‌भजन में मस्त रहते थे। वे कईबार भगवान स्वामिनारायण की बातें करते और वनविचरण के बाद श्रीहरि का आगमन सौराष्ट्र में कब होगा, वह भी बताते थे। क्योंकि अपने इष्टदेव परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण के साथ उनकी निरंतर एकता थी, इसी कारण वे सदा ब्रह्मानन्द में मस्त रहते। कभी कभी तो एकात्मभाव के कारण अनेक लोगों को ऐसा लगता था कि साक्षात् परमात्मा ही उनके द्वारा दर्शन दे रहे हैं।

एकबार मूलजी भगवान के भजन में लीन हो गए थे। उनकी ऐसी स्थिति देखकर पिताजी ने कहा, 'मूलजी, ऐसा भजन तो वृद्ध होने के बाद

ही करना चाहिए। अभी तो खेलो-कूदो और मौज-मज़ा करो !

पिता की यह बात सुनकर मूलजी उस समय कुछ नहीं बोले, और तुरंत घर के बाहर चल दिए। भोलानाथ को संतोष हुआ। थोड़ी देर के बाद मूलजी वापस लौट आए, और पिता से कहने लगे, 'पिताजी, आप कहते थे कि भगवान का भजन तो वृद्धापन में करना। परंतु मैंने गाँव में जाकर देखा तो सभी वृद्ध चौराहे पर बैठे बैठे गप्पे-सप्पे लगाते हैं। लेकिन कोई भगवान का भजन नहीं करते हैं। इसलिए हम यदि वृद्धापन के वादे पर रहें तो हमारी जवानी की कमाई भी चली जाती हैं, और इस शरीर का क्या भरोसा?'

मूलजी की ऐसी ज्ञानवाणी बात सुनकर भोलानाथ समझ गए, कि पुत्र कोई सामान्य तो नहीं हैं। उनको पुत्र के प्रति अपार गौरव हुआ और मूलजी को प्रभुभजन में सहयोग करने लगे।

मूलजी को कैथ, बेर, इमली आदि पर अधिक रुचि थी। इसलिए वे जब जब ऐसे फल आदि खाते तब भोलानाथ उनको उलाहना देते कि 'मूलजी! क्या अपने घर में दाना-पानी, गुड़-धी की कमी हैं? जो तुम ऐसी चीजें खाते हो?'

मूलजी यह सुनकर मौन रहते। परंतु सबकी समझ में यही आता था, कि मूलजी स्वाद में अनासक्त हैं, और तप-संयम में ही उनका अधिक लगाव है।

•

संवत् 1849, जेष्ठ शुक्ला पंचमी के मंगल दिन पर मूलजी का यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। जब गुरु ने उनको विद्याभ्यास के लिए कहा, तब मूलजी ने कहा, 'पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान के लीलाचरित्रों का गान करने की उत्तमोत्तम विद्या मैंने पढ़ ली है, तो मुझे अन्य विद्या पढ़ने से क्या काम?'

किन्तु गुरु ने विद्याभ्यास हेतु काशी जाने की विधि करवाई। गाँव के चौराहे पर सात समुद्र के प्रतीक समान पानी की सात लकीर खींची गईं, मूलजी सबको लांघ गए। सामने ही वशराम मामा खड़े थे, उन्होंने मूलजी को उठाकर कंधे पर बिठा लिया और घर चले आए। फिर गुरुजी ने उनको पूछा, 'आप काशी पढ़ने नहीं गए?'

मूलजी ने तत्क्षण जवाब दिया, 'जिनके चरणों में कोटि काशी का निवास है, ऐसे पुरुषोत्तम नारायण स्वयं यहाँ पधारेंगे फिर काशी जाने से

क्या लाभ ?' मूलजी भक्त के ऐसे उद्‌गार से सब चकित रह गए।

किशोर वय में प्रवेश होते ही मूलजी के मन में अन्य संप्रदायों के सिद्धांत जानने की जिज्ञासावृति बढ़ने लगी। वे स्वयं सब कुछ जानते हुए भी इस लोक की दृष्टि से मानुषी वर्ताव करते, और भिन्न भिन्न धर्माचार्यों के पास जाकर उनके मत संबंधी जानकारी प्राप्त करते थे। इस प्रकार उन्होंने एकबार वैष्णव संप्रदाय के आचार्य गुंसाई नरसिंहलालजी के पास जाकर शुद्धाद्वैत सिद्धांत की चर्चा की, परंतु मूलजी को उसमें रुचि नहीं हुई। उस समय प्रणामी पंथ का भी खूब जोर था, अतः उस मत का भी उन्होंने अभ्यास किया परंतु आखिर अपने पिता के गुरु रामानन्द स्वामी द्वारा प्रचलित शुद्ध भागवत धर्म ही सर्वथा उचित लगने से उन्होंने रामानन्द स्वामी को ही गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया।

इन दिनों में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान नीलकण्ठ वर्णी के रूप में वन में विचरण कर रहे थे। मूलजी को उनके दर्शन प्रतिदिन होते थे। एकबार दर्शन के उत्कट आवेग से वे गाने लगे :

'वनमां वहालो विचरे, आवशे आपणे गाम,
माता मुजने जाणजो, ए ज प्रभुनुं धाम !'

अर्थात् 'हे माँ, भगवान वनविचरण कर रहे हैं, वे अपने गाँव जरूर आएँगे, आप मुझे वही भगवान का निवास रूप धाम मानना !' ऐसा कहकर वे माता को समझाते कि प्रभु अपने घर आएँगे और तेरे हाथ का भोजन करेंगे, तेरा कितना बड़ा भाग्य है!' वृद्ध साकरबाई तो आश्चर्य से ऐसी बातें सुन लेते और मूलजी उनको पुनः कुछ लौकिक बातें करके अपने प्रति अहोभाव भूला देते और खेत में चले जाते।

एकबार वे अपने मित्रों के साथ खेत में जा रहे थे। कई बार अपने मित्रों को गम्मत के साथ ज्ञान देना, उनकी विशेषता थी। रास्ते में बच्चों ने एक कुआँ देखा। बच्चे इकट्ठे होकर उसमें झांकने लगे। मूलजी ने उसमें एक पत्थर डाला। कुएँ में पानी के उपर काई जमी थी, वह पत्थर लगने से दूर हट गई। और स्वच्छ पानी दिखाई देने लगा। इसे दिखाकर मूलजी ने बच्चों से कहा, 'देखिए, पानी कितना स्वच्छ हो गया! पहले उस पर काई जमी थी इसलिए पानी दिखता नहीं था। ठीक उसी प्रकार अपनी आत्मा को माया

आवृत्त कर देती है और जीव को भगवान का भजन नहीं करने देती।'

तब जिज्ञासा से बच्चे मूलजी को पूछते, 'क्या आपने भगवान को देखा है?' मूलजी कहते, 'हाँ, मैं तो भगवान को निरंतर देखता हूँ और वे एकबार जरूर यहां आएँगे।'

एक दिन रामानन्द स्वामी गाँव शेखपाट पधारे थे। मूलजी भक्त उनके दर्शन करने गए। यहाँ लालजी सुतार स्वामी के अनन्य भक्त थे। स्वामी की इच्छा से इन दोंनों के बीच अत्यधिक आत्मीयता बढ़ती गई। स्वामी तो गाँव से चले गए परंतु लालजी भक्त और मूलजी भक्त भादरा और शेखपाट के मध्य साढ़े तीन कोस चलकर एक शिव मंदिर में मिलते। और दोनों रातभर सत्संग की बातें करते रहते। रामानन्द स्वामी के लीलाचरित्र की बातें, विषय खंडन की बातें उनकी बातों के मुख्य विषय रहते। सुबह होते ही साढ़े तीन कोस चलकर दोनों अपने घर लौट आते। कई वर्षों तक इस प्रकार एक दूसरों के साथ उन्होंने साधना की, गोष्ठि की, इसमें उन्हों ने न नींद देखी, न आलस्य, न थकान! केवल सालों तक अध्यात्मगोष्ठियाँ के साथ प्रभु भजन की लगन! दोनों की मुमुक्षुता ऐसी उत्कृष्ट थी!

3. श्रीहरि के साथ प्रथम मिलाप

मूलजी भक्त की उम्र अब पंद्ररह वर्ष की हुई थी। वर्णीवेश नीलकंठ वन में भ्रमण करते हुए लोज गाँव पधारे थे। वहाँ उनकी मुक्तानन्द स्वामी से भेंट हुई। तत्पश्चात् थोड़े समय के बाद पीपलाणा गाँव में वे रामानन्दस्वामी से मिले। संवत् 1857, कार्तिक शुक्ला एकादशी के दिन रामानन्द स्वामी ने नीलकंठवर्णी को भागवती दीक्षा देने का निश्चय किया और अपने सभी भक्तों को वर्णीराज के दर्शन करने के लिए निंमत्रण दिया। शेखपाट से लालजी भक्त और भादरा से मूलजी भक्त भी पीपलाणा आ पहुँचे। यहीं पर भक्त और भगवान का, ब्रह्म और परब्रह्म का प्रथम मिलन हुआ।

मूलजी भक्त, नीलकंठवर्णी के प्रथम दर्शन से ही गद्गदित हो गए! वर्णीराज ने भी प्रेमार्द्र होकर अपने अति प्रिय भक्त को गले लगा लिया। आगंतुक सभी भक्त-समाज को संबोधन करते कहा, 'इन मूलजी भक्त

को हमारे प्रति एकत्वभाव है, और भविष्य में वे हमारी महिमा का विस्तार करेंगे।'

यह सुनकर रामानन्द स्वामी भी सहर्ष कहने लगे, 'वर्णीराज! आप ठीक ही कहते हैं। मूलजी बहुत प्रतापी हैं।'

नीलकंठवर्णी ने पुनः कहा, 'वे तो हमारे निवासरूप स्वयं अक्षरधाम-अक्षरब्रह्म हैं।'

इस प्रकार मूलजी भक्त के अक्षरब्रह्मरूप की महिमा की बात स्वयं पुरुषोत्तम नारायण ने इसी प्रसंग पर सार्वजनिक रूप से कहने का आरम्भ कर दिया।

भादरा गाँव में लोग मूलजी भक्त के ऐश्वर्य-सामर्थ्य से परिचित हो गए थे। एकबार मूलजी भक्त गाँव के चौराहे पर वशराम सुतार की दुकान पर बैठे थे। इतने में एक संन्यासी भिक्षा के लिए आया और बोला, 'मैं बहुत भूखा हूँ, मुझे खाना दीजिए, वरना मैं तो वैकुंठ में पहुँच जाऊँगा।'

यह सुनते ही मूलजी बोले, 'बाबाजी! धाम में जाना चाहते हो तो आपका पाँव लंबा करो, तो मैं अभी उठाकर धाम में पहुँचा दूँ।'

'अरे भाई! ऐसे धाम थोड़ी यहाँ पड़ा है?' बाबा ने कहा।

'बाबाजी, फिलहाल तो धाम आपके सामने ही बैठा है और इस धाम के मालिक भी पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं, परंतु आप उनको कैसे पहचान सके?' मूलजी भक्त भावावेश में बोल रहे थे।

तब वशराम सुतार ने कहा, 'अरे बाबाजी! ये मूलजी जो कहते हैं वैसा ही है। आप पाँव लंबा मत करना, वरना ये तो यहाँ से उठा कर आपको फेंकेंगे तो सीधे धाम पहुँचा देंगे। आप बाहर से आए हैं, अतः उनको पहचानते नहीं, लेकिन बिलकुल सही बात है कि अष्टावरण के पार परम धाम जो अक्षरधाम है, वहाँ अल्प जीव की गति कभी संभवित नहीं है! परंतु मूलजी भक्त वास्तव में साक्षात् ब्रह्म है, तो वही इतने आत्मविश्वास से बोल सकते हैं।' मूलजी के स्वरूप में ऐसा ऐश्वर्य देखते ही बाबाजी और वहाँ से चल दिए।

●

एकबार भादरा में नथू नायी मूलजी भक्त का क्षौरकर्म (मुंडन) कर

रहा था। तब श्री रामचन्द्रजी के भक्त नथू ने कहा कि 'रामचंद्र भगवान कितने प्रतापी! कि पूरी अयोध्या को वे वैकुंठ में ले गए।'

मूलजी भक्त ने कहा, 'नथू, यदि तू कहे तो सारे भादरा गाँव को मैं अक्षरधाम में ले जाऊँ !'

यह सुनकर नथू नायी को हँसी आयी। परंतु इतने में तो मूलजी भक्त के शरीर से शीतल शांत प्रकाश फैला और चारों ओर छा गया। देखनेवाले चकित रह गए। नथू तो अपने स्थान पर खड़ा हो गया ! उसने देखा तो उस प्रकाश में मूलजी की स्मितपूर्ण मुखाकृति झलक रही थी। धीरे धीरे प्रकाश पुनः मूलजी भक्त के शरीर में समा गया। नथू आश्चर्यवत् मूलजी भक्त को देखता रहा। तब वहाँ खड़े कानोजी बोले, 'नथू, सब कहते हैं कि ये मूलजी अक्षर का अवतार है।'

परंतु नथू बेचारा इसमें क्या समझ सके? हाँ, उसको इतनी दृढ़ता तो हो चुकी कि मूलजी अत्यंत प्रतापी बालक हैं।

4. भादरा में महाराज द्वारा कही गई मूलजी की महिमा

संवत् 1860 में महाराज एकबार अलैया नामक गाँव में पधारे। तब भादरा के सभी हरिभक्त उनके दर्शनार्थ गए थे। यहाँ सभी हरिभक्तों ने मिलकर महाराज को भादरा पधारने का निंमत्रण दिया। महाराज भादरा पधारें।

यहाँ हररोज दोपहर को श्रीहरि वशरामभाई, डोसाभाई, राजाभाई, रामाभाई, रत्नाभाई, मूलजीभाई तथा सुंदरजी आदि को साथ लेकर ऊँड नदी पर स्नान करने पधारते थे। तट पर ही बरगद का विशाल पेड़ है। उस पर चढ़कर नदी में गोता लगाते, जलक्रीडा करते, नदी के तट पर सबको ध्यान में बिठाते। इस प्रकार विविध लीलाएँ करते थे।

एकबार तो श्रीहरि ने नदी में एक बड़ी दरी (मोटा कपड़ा) पानी पर बिछवा दी! और उस पर मूलजी भक्त, लालजी सुथार आदि भक्तों के साथ स्वयं बैठे और उस कपड़े की दरी को अपनी दिव्य शक्ति से नाव की तरह चला दी। श्रीहरि ने ऐसी अदभुत लीला भादरा के भक्तों को दिखाई।

•

एक दिन शाम के समय वशराम सुतार अपने खेत में जा रहे थे।

खेत की सड़क पर ही उन्होंने चींटियों का एक बड़ा बमीठा देखा। वशरामभाई सोच में पड़ गए कि वर्तमान समय में साक्षात् पुरुषोत्तम नारायण तथा उनका धाम दोनों पृथ्वी पर विद्यमान हैं। किन्तु इन तुच्छ जीवों को इसका क्या लाभ? भगवान का सम्बन्ध इन जीवों को कब होगा? वशराम भक्त विचार ही करते थे, कि आकाश में उन्होंने सैकड़ों विमानों को देखा! चींटियों ने तुरन्त चतुर्भुज रूप प्राप्त कर लिया, और सबकी गति वैकुण्ठ धाम के प्रति हो गई।

वशराम भक्त चकित रह गए। घर आकर श्रीहरि को पूरी घटना सुना दी। उन्होंने कहा, 'हमें तो करोड़ों जीवों का कल्याण करना हैं, तुम्हारे इस गाँव में हमारा अक्षरधाम मूलजी भक्त प्रकट हुए हैं, अतः तुम जो भी शुभ संकल्प करेंगे, उन्हें हम पूर्ण करेंगे ! आज तो आपने मात्र चींटियों के लिए कल्याण का संकल्प किया, किन्तु यदि आपने समस्त ब्रह्माण्ड के जीवों के लिए ऐसा संकल्प किया होता, तो पूरे ब्रह्माण्ड के जीवों का भी मोक्ष हो जाता!'

श्रीहरि की ऐसी परभाव की बातें सुनकर सब विस्मित हो गए। छः दिन तक यहाँ सबको लाभान्वित करके श्रीहरि ने बिदा ली।

●

फिर श्रीहरि संवत् 1864 के आश्वीन मास में भादरा पधारे।

इस बार भादरा के हरेक हरिभक्त ने महाराज को अपने वहाँ भोजन के लिए पधारने का आग्रह किया। श्रीहरि मूलजी भक्त को हमेशा अपने साथ रखते थे और अलौकिक सुख देते थे।

एकबार वे देवा कुनबी के वहाँ भोजन लेने जा रहे थे। रास्ते में मूलजी का घर आया। श्रीहरि भक्तों के साथ उनके घर पधारें। उस समय मूलजी पकाया हुआ ज्वार और दही खा रहे थे। श्रीहरि ने मूलजी का समाचार पूछा और आगे चले। रास्ते में श्रीहरि ने भक्तों को मूलजी की महिमा बताते हुए कहा, 'यह मूलजी फिलहाल तो झोंपडी में रहकर सामान्य धान का भोजन करते हैं, परंतु भविष्य में वे बड़ी हवेली में रहेगें और हज़ारों भक्तों के नियंता होंगे। बड़े त्यागी बनेंगे। उनकी महिमा देश-विदेश में फैलेगी। हमारे साथ उनकी मूर्ति भी मंदिर में स्थापित होगी, और लाखों

भक्तों उनकी पूजा करेंगे।'

इस प्रकार मूलजी भक्त की बात करते-करते देवा कुनबी के घर आ गए। श्रीहरि के अंतर में अभी तक मूलजी का ही स्मरण था इसलिए सहजता से उन्होंने पूछ लिया, 'क्या मूलजी का घर आ गया?'

तब सभी भक्त ने कहा, 'अरे, ना महाराज, ये तो देवा कुनबी का घर है और आज हमें यहाँ भोजन लेना हैं।' यह सुनकर श्रीहरि मंद मंद मुस्कुराने लगे। उन्हें सहजरूप से मूलजी का स्मरण हो जाता था।

●

शरद पूनम का उत्सव श्रीहरि ने यहीं मनाया। अपने धामरूप मूलजी का आज जन्मदिन था। श्रीहरि ने उसकी घोषणा की और सर्व प्रथम अपनी उपस्थिति में ही उन्होंने भादरा गाँव में अक्षर-जन्मोत्सव मनाया। सब को दूध-पोये का महाप्रसाद दिया। इस प्रकार अनेक प्रसंग पर श्रीहरि मूलजी भक्त की यथार्थ महिमा सबको समझाते थे।

●

एक दिन मूलजी ने भी श्रीहरि को भोजन के लिए निमंत्रण दिया। श्रीहरि वशरामभाई, डोसाभाई, रत्नाभाई आदि को साथ लेकर निश्चित दिन पर किन्तु निश्चित समय से पहले मूलजी के घर आ पहुँचे। मूलजी कुछ काम से खेत में गए हुए थे, और माँ भोजन तैयार कर रही थीं। माता ने श्रीहरि के लिए चारपाई बिछा दी, भक्तिभाव से सत्कार किया। श्रीहरि बिराजमान हुए, और माता से पूछने लगे, 'माँ, क्या मूलजी हमको कभी याद करते हैं?'

'अरे, महाराज, वह तो पूरा दिन आपका ही रटन करता रहता है। चलते फिरते, कामकाज करते वह एक पल भी आपको नहीं भूलता। मुझे तो लगता है कि मूलजी को जैसा आपके प्रति स्नेह है, वैसा जगत में शायद ही किसी के उपर होगा!

'हम भी मूलजी को अखंड याद करते हैं।' श्रीहरि ने साकरबाई से कहा।

माँ ने मूलजी की बात बताते कहा, 'महाराज! जब छपिया में आपको यज्ञोपवीत दी गई, फिर आप वन में पधारे आदि सब लीलाएँ मूलजी मुझे सुनाता रहता था। एक दिन तो वह कहता था कि 'माँ, एक दिन महाराज

यहाँ अवश्य पधारेंगे। और तुम्हारे हाथ का भोजन भी अंगीकार करेंगे।'

यह सुनकर श्रीहरि मुस्कुराने लगे और बोले, 'माँ, आपको वह समझमें नहीं आएगा, लेकिन आपके पुत्र मूलजी तो हमारे निवास ले लिए साक्षात् अक्षरधाम हैं। आपके गर्भ में थे तब और गर्भ में आने से पहले भी मूलजी निरंतर हमें देखते थे।[1] वे हमारे साथ एकत्व से जुड़ गए हैं, और हम भी उनके साथ हमेशा जुड़ कर रहे हैं। मूलजी तो इतने महान है कि दस अवतारों और ब्रह्मा, विष्णु, महेश जो एक ब्रह्मांड में रहते हैं, ऐसे अनन्त ब्रह्मांडों को मूलजी ने धारण किया है, और वे प्रकृतिपुरुष से पर हैं। सच्चिदानंदरूप हैं। सर्वत्र व्यापक, सब के कारण और सब के आधार हैं। हम उनके द्वारा सभी कार्य करते हैं। हम बिना उनके, एक पल भी नहीं रहते। जीव, ईश्वर से लेकर सर्व अवतार पर्यंत उनके संबंध से शुद्ध चैतन्य ब्रह्म होकर आत्यंतिक मुक्ति को पाते हैं। ऐसे मूलजी सर्व के कारण शुद्ध चैतन्यब्रह्म है।'

माँ को लगा कि मानो अमृत की धारा बरस रही है! उनकी आँखें हर्षाश्रु बरसाने लगीं। उन्होंने कहा, 'अहो! महाराज! मेरे बेटे की इतनी महिमा होगी, मूलजी इतना महान होगा, वह मेरे जैसे मायिक जीव को कैसे मालूम हो सकता है? हम सब तो मोहवश मूलजी को पुत्र समझकर कितनी ही बार डाँट-फटकार कर या उलाहना करके उसके पास घर के छोटे-बड़े काम करवाते रहते थे! अब हम ऐसे पापकर्मों से छुटकारा कब पाएँगे?'

---

1. श्रीहरि ने इस प्रसंग पर मूलजी भक्त की जो महिमा कही उसे लोधिका के दरबार साहब अभयसिंहजी ने 'श्री पुरुषोत्तम चरित्र' ग्रंथ में इस प्रकार लिखी हैं:

चोपाई

सुनी बोले सब जग आधारा, है वह अनादि शिष्य हमारा ॥
गर्भमांही नहीं आये जब ही, देखत मम मूर्ति कुं तब ही ।
गर्भ हुं ते पुनि यह अवसर ही, मम मूर्ति को समरन कर ही ॥

दोहा

आदि मुक्त है यह बटु, यूंहि कह्यो घनश्याम ।
समय पाई साधु भये, धर्यो गुणातीत नाम ॥

(पुरुषोत्तम चरित्र, अध्याय-54)

श्रीहरि ने माँ की निर्दोष वाणी सुनते ही उन्हें सांत्वन दिया, 'माँ, तुम्हारा पुत्र मूलजी महासमर्थ है, उसके संबंध से आपका तो कल्याण ही हो गया, तो पाप तो कहाँ लग सकता है? आपका बेटा अनेक कल्याणकारी गुणों से विभूषित है, फिर भी मायिक गुणों से पर, गुणातीत भी है!'

साकरबाई श्रीहरि की मधुरवाणी सुनते आनन्दविभोर हो रहे थे। अपने पुत्र की इतनी महिमा तो उन्हें आज तक मालूम नहीं थी। श्रीहरि ने जो भी कहा, माँ को पूरा तो समझ में ही नहीं आया, फिर भी इतनी दृढ़ता तो उनके हृदय में आवश्य हो गई कि मूलजी कोई सामान्य लड़का नहीं है, वह तो एक महान विभूति है!

श्रीहरि ने अब हरिभक्तों से कहा, 'हे हरिभक्तों, आप जब मेरे अंगभूत मूलजी भक्त की महिमा समझ लेंगे, तभी आप मेरी यथार्थ महिमा समझ सकेंगे!'

तब वशराम भक्त ने पूछ लिया, 'हे महाराज, क्या अक्षर की महिमा समझने के बाद ही आपकी महिमा समझ में आती है?'

श्रीहरि ने मंद मंद मुस्कुराते हुए कहा, 'हाँ, जब आप अक्षर की यथार्थ महिमा समझेंगे, और अक्षररूप होंगे, तभी हमारे स्वरूप की महिमा यथार्थ समझ सकेंगे। उपनिषदों में तथा अन्य शास्त्रों में हमारे अक्षरधाम का वर्णन ज्यादातर हमारा स्वरूप समझकर ही किया गया है। वह अक्षरब्रह्म सब से परे हैं, हम उस अक्षरब्रह्म से भी पर हैं, और अक्षरब्रह्म तो जीव को संसारसिन्धु से तारने वाले है!'

श्रीहरि के मुख से बहता हुआ महिमा का धाराप्रवाह इतना अद्‌भुत था, कि डोसाभाई, वशरामभाई, रत्नाभाई आदि हरिभक्त श्रीहरि की मूलजी के विषय में हुई महिमा सभर बातों से मंत्रमुग्ध से रह गए थे!

फिर श्रीहरि बोले, 'अक्षरब्रह्म की ऐसी अपरंपार महिमा है, फिर भी जो कोई ऐसा कहे कि अक्षरब्रह्म का अस्तित्व ही नहीं है, या फिर उनकी महिमा ही न समझे तो ऐसा सिद्धांतविहीन मंतव्य रखनेवाला स्वयं असत् हो जाता है, अर्थात् उसकी आत्मा जड़ सी हो जाती है! अत: हे भक्तों, अक्षर की महिमा मुमुक्षुओं को अवश्य समझनी चाहिए। मूलजी भक्त अक्षरब्रह्म

के अवतार हैं, हम उस अक्षरब्रह्म में रहनेवाले पुरुषोत्तम नारायण हैं! आप सब इतना ही समझेंगे, तो जिस एकांतिक धर्म की स्थापना के लिए हम प्रकट हुए हैं, वह एकांतिक धर्म आपको भी सिद्ध हो जाएगा।'

ऐसी परावाणी के स्रोत में बहकर सब के आनंद की सीमा न रही, सर्वत्र शांति फैल गई। क्योंकि इस प्रकार आत्यंतिक मुक्ति के द्वार समान मूलजी भक्त का यथार्थ स्वरूप आज सबको अधिक स्पष्ट हुआ।

थोड़ी देर बाद मूलजी भक्त वहाँ आ पहुँचे। आज तक सभी ने उनके दिव्य चरित्र देखे थे, परंतु उनके सत्यस्वरूप का ज्ञान तो सबको महाराज के श्रीमुख से प्रथमवार ही सुनने को मिला।

फिर श्रीहरि मूलजी के साथ भोजन करने पधारे, उन्होंने आग्रह करके मूलजी को अपने साथ ही बिठाये। फिर वे अपने निवास पर पधारें।

इस प्रकार भादरा में एक मास रहकर श्रीहरि ने सबको अलौकिक आनंद दिया। मूलजी भक्त की यथार्थ महिमा सबको दृढ़ कराई। इसके बाद थोड़े समय में ही साकरबाई अक्षरधाम में सिधार गईं।

5. गृहत्याग और दीक्षा

त्रिविध ताप से तप्त इस संसार में कौटुंबिक संबध गौण करके मूलजी निरंतर उदास रहते थे। कामकाज में भी उनका मन नहीं लगता था मूलजी भक्त नदी के तट पर अपने खेत में काम कर रहे थे। संसार-त्याग करने का श्रीहरि का आदेश कब मिलेगा? यही एक प्रतीक्षा में उनके दिन गुजरते थे। अचानक एक दिन श्रीहरि ने उनको अंतरीक्ष में दर्शन दिए। संवत् 1866 का कार्तिकी पूर्णिमा का वह दिन था। उन्हों ने पीतांबर धारण किया था, सिर पर दक्षिणी पाघ पहनी थी।

श्रीहरि ने मूलजी भक्त से कहा, 'हम क्या करने आये हैं और क्या हो रहा है? इस लोक में ब्रह्मतेज सूख गया है, इसलिए आप संसार छोड़कर अभी निकल चलो।'

एक पल का भी विलंब किए बिना मूलजी संसार को छोड़कर गढ़डा की और चल दिए। घर पर तो नहीं गए लेकिन पहने हुए उसी कपड़ों में ही मूलजी भक्त सीधे गढ़डा पहुँचे। श्रीहरि के पास आकर उन्होंने दीक्षा

देने की तथा सेवा में रखने की याचना की।

जिनको परमात्मा के सिवा अन्यत्र कहीं प्रीति नहीं है, ऐसे बृहद् वैराग्यवान मूलजी भक्त की स्थिति से सबको अवगत कराने हेतु श्रीहरि ने उनकी परीक्षा ली। उन्होंने उनसे कहा, 'हम आपको त्यागी दीक्षा जरूर देंगे, परंतु क्या आप अपना घर जलाकर आए हैं? कि यों ही चले आए हैं?



सरल स्वभाव के मूलजी ने उत्तर दिया, 'महाराज, मैं तो यों ही चला आया हूँ।'

'जाओ, घर जलाकर आओ, फिर हम दीक्षा देकर त्यागी बनाएँगे।' महाराज ने आदेश दिया।

आदेश मिलते ही मूलजी भक्त भादरा जाने के लिए रवाना हुए। श्रीहरि जानते थे कि मूलजी भक्त अवश्य घर जलाकर आएँगे, इसलिए उन्होंने तुरंत उनके पीछे पार्षद भगुजी को भेजा और मूलजी को वापस बुला लिए। ज्ञान दृष्टि से तो मूलजी ने अंतर से घर-परिवार से स्नेह तोड़ दिया था। लेकिन स्थूल दृष्टि से भी संसार को भस्मीभूत करने की उनकी उत्कट वैराग्य-भावना देखकर श्रीहरि ने उनके सांख्यज्ञान की बहुत प्रशंसा की।

कुछ समय के बाद उनके छोटेभाई सुन्दरजी ब्राह्मण के साथ उनको वापस घर ले जाने के लिए आए। ब्राह्मण ने मूलजी भक्त को उपदेश देते हुए कहा कि,

'संसारमां सरसो रहे, मन मारी पास ।
संसारमां लोपाय नहीं, ते जाण मारो दास ॥'

'अर्थात् भगवान कहते हैं, संसार में रहते हुए भी संसार से अलिप्त मन रखना है, एसा ही मेरा सच्चा भक्त कहा जाता है।'

अतः मूलजी भक्त ने कहा कि,

'चित्त की वृत्ति एक है, भावे तहाँ लगाओ,
चाहे तो हरि की भक्ति करो, चाहे तो विषय कमाओ।'

इतना कहकर मूलजी ने घर आने के लिए मना कर दिया। किन्तु महाराज ने आदेश देते हुए मूलजी से कहा, 'फिलहाल घर जाईए, फिर हम बुला लेंगे!'

तब मूलजी ने कहा, 'मुझे घर नहीं जाना है, मुझे तो आपकी सेवा में निरंतर रहना है। तब श्रीहरि ने उनको समझाते हुए कहा कि चट्टान के नीचे यदि अपना हाथ आ जाए, तो उसे धीरे-धीरे संभालकर निकालना चाहिए। इसलिए अभी तो आप घर जाईए, और सबको समझाकर हमारे पास आ जाना।'

श्रीहरि की आज्ञा से मूलजी घर गए। कुछ समय के बाद वे अपने छोटे भाई सुंदरजी को भी समझाकर त्यागी दीक्षा के लिए साथ में ले आए।

जैसे सूर्य के समक्ष अंधेरा इकठ्ठा होकर जाए तो वहाँ वह टिक नहीं सकता, ठीक उसी प्रकार जो निर्लेप हैं, निर्विकार है उसको किसका बंधन? वह तो जिस प्रकार कछुआ अपना अंग समेट लेता है, वैसे लौकिक संबंध को तोड़कर रख देता है। इस प्रकार मूलजी भक्त ब्रह्मविद्या के प्रवर्तन हेतु श्रीहरि की सेवा में प्रवृत्त हो गए।

•

संवत् 1866 के पौष महीने में श्रीहरि ने अपने अति प्रिय भक्तराज अनादि अक्षरब्रह्म मूलजी भक्त को धूमधाम से भागवती दीक्षा देने के लिए डभाण गाँव में महायाग का प्रारंभ किया। इस अहिंसक यज्ञ में श्रीहरि ने हज़ारों ब्रह्माणों को भोजन तथा दान से संतृप्त किए। पूर्णिमा के दिन यज्ञ की पूर्णाहुति में श्रीहरि ने मूलजी भक्त को वेदोक्तविधि अनुसार भागवती दीक्षा प्रदान की, और शुभ नाम 'गुणातीतानंद स्वामी' घारण करवाया।



यह अति विशिष्ट और विलक्षण नाम ही उनकी अक्षरब्रह्म स्वरूप[2] की महत्ता को सूचित करता है।

6. सद्‌गुरु कौन ?

श्रीहरि की आज्ञा से गुणातीतानंद स्वामी दीक्षा के तुरन्त बाद मुक्तानंद स्वामी के साथ गाँव-गाँव विचरण कर रहे थे। एकबार स्वामी जेतलपुर पधारे। यहाँ रात्री के समय मुक्तानंद स्वामी एक विशाल भवन पर विश्राम करने के लिए आए। मुक्तानंद स्वामी कंकड़वाली जमीन पर बिना कुछ बिछाये सो गए, अतः स्वामी भी उसी प्रकार सोने की तैयारी करने लगे। मुक्तानंद स्वामी ने स्वामी से कहा, 'आप नीचे कुछ बिछाकर सोईए, वरना आपको कंकड़ लगेंगे।'

'परंतु स्वामी, आपने तो भूमिशयन ही किया है!' गुणातीतानंद स्वामी ने नम्रता से कहा।

तब मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'मुझे तो महाराज की ऐसी ही आज्ञा है कि भूमि पर शयन करना!'

स्वामी ने नम्रता से कहा, 'महाराज की आज्ञा तो सबके लिए है। कल्याण की गरज मुझे भी है। अतः मैं भी इसी प्रकार विश्राम करूँगा!

मुक्तानंद स्वामी ये छोटे संत की त्याग-वैराग्य की रुचि देखकर बहुत प्रसन्न हुए, और बोले, 'ये संत बहुत प्रगति करेंगे!'

●

---

2. आदि आचार्य रघुवीरजी महाराज ने 'श्री हरिलीलाकल्पतरु :' ग्रंथ की रचना करवाई, उसमें भी इस बात का उल्लेख मिलता है :

श्री हरिकृष्ण उवाचः मूलजी शमणे दीक्षां ददानस्य प्रजायते ।
भूयान्मेऽत्र समानन्दो यतो धामाऽक्षरं स मे ॥
मुक्तैरनन्तैः साकं मे यत्राऽखण्डतयोष्यते ।
ऊर्ध्वाधोभागरहितं तन्मूलं धाम चाक्षरम् ॥

अर्थात् श्री हरिकृष्ण भगवान कहते हैं, 'ये मूलजी शर्मा जो मेरा मूर्तिमान अक्षरब्रह्म धाम है, उनको आज दीक्षा देते हुए मुझे बहुत आनंद होता है, इनमें हम हमारे अनंत मुक्तों के साथ निवास करते हैं, और जो अधोर्ध्व और प्रमाण से रहित है, वह मेरा धाम ये अक्षरब्रह्म हैं। – श्री हरिलीलाकल्पतरुः – 7/17/49-50

संवत् 1867 के फाल्गुन महीने में श्रीहरि ने सारंगपुर में राठोड़ धाधल के वहाँ फूलदोल का उत्सव किया। गुजरात के विभिन्न प्रांत के संत-हरिभक्तों के मंडल उत्सव मनाने आ गए। रंगोत्सव की तैयारी पूर्ण हो गई थी। इससे पहले कुछ अलौकिक उद्देश्य से श्रीहरि कबीरजी रचित होली का पद गाने लगे :



‘जोगीआ टारत जन्म केरा फांसला रे,
प्रेम का प्याला जोगीआ, जुग जुग जीवो सो जोगीआ ।’

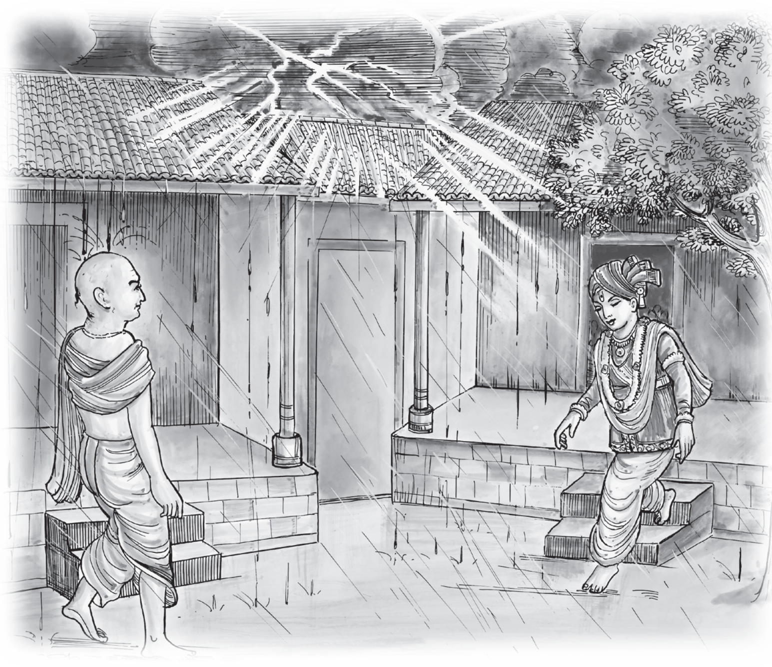
महाराज के साथ पूरा संत समूह भी यह पद बोलने लगाः

‘कोटि कृष्ण जोडे हाथ, कोटि विष्णु नमे माथ,
कोटि शंकर धरे ध्यान, कोटि ब्रह्मा कथे ज्ञान,
सद्‌गुरु खेले वसंत ।’

यह पंक्ति गाते ही श्रीहरि अचानक रुक गए और अपने हाथ में जो छड़ी थी, उसका स्पर्श गुणातीतानंद स्वामी की छाती में किया। फिर आनंद स्वामी तथा मुक्तानंद स्वामी को समीप बुलाकर श्रीहरि ने पूछा, ‘स्वामी ! ऐसे सद्‌गुरु कौन ?’

तब दोनों संत एक साथ बोले, ‘महाराज! ऐसे सद्‌गुरु तो आप हैं, दूसरा कौन हो सकता है ?

किन्तु श्रीहरि ने आज एक अद्‌भुत सत्य का कृपाकर के उद्‌घाटन कियाः ‘हम तो सर्वोपरि पुरुषोत्तमनारायण हैं, और इस पद में जिसकी



महिमा कही है, एसे सद्‌गुरु तो ये गुणातीतानंद स्वामी हैं। कबीरजी अक्षरब्रह्म को ही सद्‌गुरु साहब कहकर भजन करते थे। वे अक्षरधाम के विराट स्वरूप में अनंत मुक्त और पुरुषोत्तमनारायण को धारण किए हैं। और साकार रूप से वे हमारी सेवा में हैं। वही ये गुणातीतानंद स्वामी हैं। वे आज हमारे साथ हमारी उपासना प्रवर्तन करने हेतु सद्‌गुरु रूप में प्रकट हुए हैं। इस होरी में जो महिमा बताई है, वह उनकी है। और हम तो उनसे परे तथा उनके स्वामी और अक्षरब्रह्म को भी उपासना करने योग्य पुरुषोत्तमनारायण हैं।'

श्रीहरि के मुख से स्वामी की ऐसी महिमा सुनकर सब विस्मित रह गए। क्योंकि छोटी उम्र और सदा सेवक भाव से रहनेवाले स्वामी की ऐसी महिमा सब सहजरूप में कैसे समझ सकते?

7. दर्शन की उत्कट इच्छा

महापुरुष का जीवन ही उनकी महिमा है। गुणातीतानन्द स्वामी के ऐसे अनंत गुण उनके अनेक प्रसंगों से उजागर होते हैं।

संवत् 1868 के वर्ष में कृष्णपक्ष की रात्री थी, आकाश बादलों से छाया हुआ था। बीजली दमकती थी। थोड़ी ही देर में मुसलाधार बारिश शरू हो गई। एक संत इस आधी रात के समय श्रीहरि के प्रत्यक्ष दर्शन हेतु चकोर की भाँति खड़े थे। अनराधार वर्षा के कारण छत से पानी की मुसलाघार धाराएँ हो रही थीं। नीचे खड़े गुणातीतानंद स्वामी भीग रहे थे। इतने में मुक्तानंद स्वामी ने कुछ कारण से कमरे के बाहर झांका और बीजली की चमक में देख लिया कि कोई अनराधार वर्षा में छत नीचे खड़े भीग रहा है। उन्होंने एकदम पूछा, 'अरे, कौन है?'

स्वामी ने नम्रता से कहा, 'वह तो मैं निर्गुणानंद! महाराज दरबारगढ़ में कथा करने गए हैं, उनके लौटने पर दर्शन की झांकी हो जाए इसी इच्छा से यहाँ खड़ा हूँ!'

श्रीहरि के दर्शन की स्वामी की इतनी तीव्र ललक देखकर मुक्तानंद स्वामी आश्चर्यचकित रह गए। और मन ही मन सोचने लगे, 'अहो, इनकी श्रद्धा तो देखिए! इनको नहीं है अपनी देह की परवाह, और नहीं है नींद

की। महाराज की मूर्ति को अंतर में निरंतर देखते रहने पर भी इस संत को प्रत्यक्ष दर्शन की कितनी तीव्रता है!' ऐसा सोचते हुए मुक्तानंद स्वामी कमरे में चले गए।

स्वामी तो बरसात में भीगते हुए देर रात तक खड़े रहे। महाराज दरबारगढ़ से भगवद्वार्ता करके लौटे। तब बीजली के क्षणभर के उजाले में महाराज के दर्शन की झांकी करके स्वामी गाँव के बाहर, घेला नदी के तट पर एक पेड़ के नीचे सो गए। उस समय गढ़पुर में मंदिर नहीं था। महाराज और बड़े संत दरबारभुवन में रहते थे और दूसरे संत इधर-उधर उन्मत्त गंगा के तट पर या गाँव की दुकानों के ओटे पर ही विश्राम लेते थे।

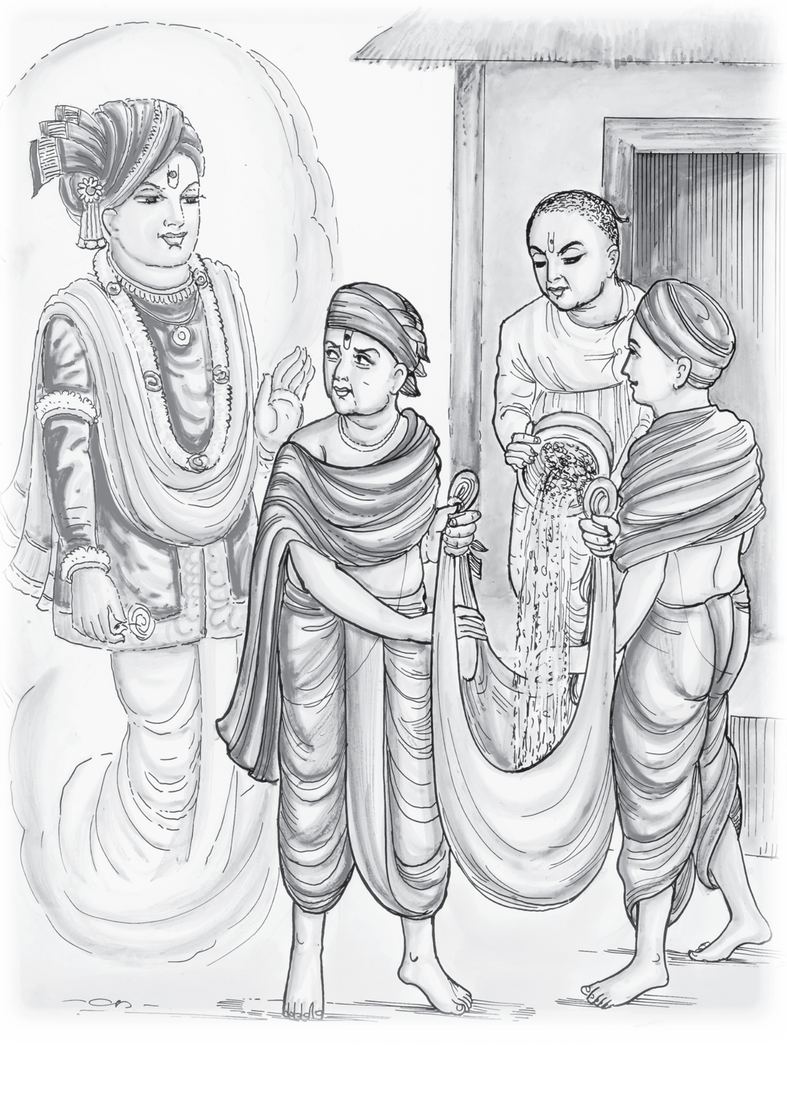
8. वृत्ति का निरोध

संवत् 1869 के वर्ष में सौराष्ट्र में भयानक अकाल पड़ा था। इसी कारण श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी को दो सौ संतों के साथ सुरत भेज दिए। गुणातीतानंद स्वामी भी इसी मंडल के साथ थे। इन संतों का जहाँ निवास था वहाँ एक पुराने मकान में एक नील बंदर रहता था। एक रात को कथा प्रसंग में मुक्तानंद स्वामी ने सब संतों से पूछा, 'देखिए, हमारी इन्द्रियाँ कितनी चंचल हैं ! हम हमेशा उसके छल में आ जाते हैं ! इस सामने वाले मकान में एक बंदर रहता है, उसकी और देखने की कोई जरूर नहीं होने पर भी हम में से कई संतों ने उसे अवश्य देखा होगा! हम इन्द्रियों के वश हुए बिना नहीं रहे होंगे। अत: जिन्होंने उसको देखा न हो, वह एक साथ खड़े हो।' मुक्तानंद स्वामी का यह वचन सुनकर सब स्तब्ध रह गए। इस समय इन दो सौ संतों में से सिर्फ एक गुणातीतानंद स्वामी ही हाथ जोड़कर खड़े हुए।

यह देखकर मुक्तानंद स्वामी भी अत्यंत विस्मित रह गए। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि 'दो सौ संतों में वृत्ति के निरोघ करनेवाले मात्र आप ही एक निकले। एक बार मेरी भी दृष्टि तो उस पर पड़ी थी।'

इस प्रकार स्वामी को हमेशा अंतर्दृष्टि रहने से उनके अंतर में श्रीहरि की मूर्ति के सिवा और कुछ नहीं था। स्वामी की ऐसी ब्रह्मस्थिति देखकर मुक्तानंद स्वामी ने उनकी खूब सराहना की।

उस समय सुरत शहर में सभी संत एक एक करके हररोज भिक्षा माँगने जाया करते थे, लेकिन स्वामी को तो मुक्तानंद स्वामी की आज्ञा से प्रतिदिन भिक्षा के लिए जाना पड़ता था! इसका कारण यह था कि दूसरे संत जब शहर में झोली माँगने जाते, तब अनजान से भी स्त्री की ओर दृष्टि चली जाती, और उनको उस दिन उपवास करना पड़ता था। परंतु



जिनकी वृत्ति श्रीहरि में निरंतर स्थिर थी, ऐसे स्वामी इस नियम का पालन सहजरूप से किया करते थे। अत: उनके साथी संत हररोज बदलते रहते थे, पर स्वामी तो निश्चलभाव से प्रतिदिन भिक्षा माँगते रहते थे।

श्रीहरि के दिव्य स्वरूप में स्वामी की अखंड स्थिति थी, इसका अनुभव एकबार स्वामी के साथ भिक्षा माँगने गए हुए आनंद स्वामी को हुआ। भिक्षा के लिए जो झोली थी, उसके दो छोर स्वामी ने पकड़े थे और दूसरे दो छोर आनन्द स्वामी ने पकड़े थे। नीची दृष्टि रखकर 'नारायण हरे सच्चिदानंद प्रभो' के नारे लगाते दोनों रास्ते पर चलते थे। उस समय महाराज दिव्य स्वरूप में स्वामी के आगे ऊलटे पाँव चल रहे थे, ऐसे दर्शन हुए! स्वामी नतमस्तक महाराज को प्रार्थना करने लगे, 'महाराज, आप सन्मुख दृष्टि रखकर चलें, वरना उबड़खाबड़ रास्ते में आप कदाचित् गिर जाएँगे।'

तब महाराज ने स्वामी से कहा, 'आप जैसे साधु को हम पीठ कैसे दे सकते?'

इस वार्तालाप को आनंदस्वामी ने श्रीहरि की कृपा से प्रत्यक्ष देखा और सुना था। इससे आनंद स्वामी को अत्यंत आश्चर्य हुआ! और स्वामी की यथार्थ महिमा भी समझ में आई। इस प्रकार छ: मास तक सुरत शहर में भिक्षा माँगने का स्वामी का नित्यक्रम रहा था।

स्वामी हमेशा नासिकाग्र दृष्टि रखते और श्रीहरि की मूर्ति के बिना अन्य कुछ नहीं देखते। अर्थात् अन्य पदार्थ में उनकी वृत्ति आसक्त होती ही नहीं थी। फलस्वरूप जिन पर स्वामी की दृष्टि पड़ती उसके अंतर के द्वार खुल जाते थे।

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोघ:' योग का यह परम लक्ष्य स्वामी को श्रीहरि की मूर्ति में अखंड सिद्ध होने पर भी स्वामी को श्रीहरि के प्रत्यक्ष दर्शन की खूब चाह रहती थी।

9. आज्ञा धारक

एकबार मुक्तानंद स्वामी सभा में बैठे थे। कथा हो रही थी। तब एक हरिभक्त ने श्रीहरि के विषय में समाचार पूछे। क्योंकि उन्होंने श्रीहरि के लिए बांस-अद्रख और अचार तैयार किया था, और महाराज के लिए

भेजने की उनकी इच्छा थी।

मुक्तानंद स्वामी ने बताया कि 'फिलहाल तो श्रीहरि के कोई समाचार नहीं है, परंतु शायद वे गढ़डा में होंगे। मैंने भी 'सतीगीता' पुस्तक की रचना अभी ही की है, उसे प्रसादी करने के लिए भेजना है। यदि कोई उत्साही संत मिले तो उनके साथ भेजें।'

मुक्तानंद स्वामी की इच्छा देखकर गुणातीतानंद स्वामी सौराष्ट्र की ओर जाने के लिए तुरंत तैयार हुए। उनके साथ एक शांतानंद गुदडिया साधु जबरदस्ती जाने को तैयार हुए। उन्होंने कहा, 'आप कहेंगे तो भी जाऊँगा और मना करेंगे तो भी जाऊँगा।' ऐसी उन्मत्ताई देखकर मुक्तानंद स्वामी ने संमति दे दी।

अचार की तीन बरनी, 'सतीगीता' नाम की पुस्तक, एक सुंदर चट्टाई, तथा बरफी (एक प्रकार की मिठाई) की एक मटकी आदि लेकर स्वामी तैयार हुए। सुरत के प्रेमी भक्तों ने अपनी ओर से श्रीहरि को गले लगाने की विनती की थी। स्वामी श्रीहरि का स्मरण करते हुए चलते-चलते चार दिन के बाद गढ़डा पहुँचे। श्रीहरि तो अकाल के कारण गुप्तवास करते थे। और किसीको मुलाकात नहीं देते थे। स्वामी ने घेला नदी के तट पर निवास किया। जो कोई दरबारगढ़ से आते, स्वामी उनसे श्रीहरि के समाचार पूछते, परंतु सही समाचार नहीं मिलते थे। आखिर नाजा जोगिया ने समाचार दिया कि 'महाराज कारियाणी पधारने वाले हैं, इसलिए आप वहां पहुँचे।'

स्वामी प्रसन्न होकर तुरन्त कारियाणी पहुँचे। श्रीहरि को संदेश भेजा। उन्होंने गुणातीतानंद स्वामी का नाम सुनते ही उनको खूब प्रेम से तुरन्त बुला लिए। वस्ताखाचर के दरबारगढ़ में स्वामी का उनके साथ मिलन हुआ। श्रीहरि भोजन के लिए तैयार ही हुए थे कि स्वामी ने बरफी की मटकी और अचार उनके चरणों में समर्पित किए। श्रीहरि ने प्रेम से उसका स्वीकार किया, और स्वामी को भी प्रसादी दी। स्वामी तो अपलक नयनों से श्रीहरि की मूर्ति का दर्शन-सुख ले रहे थे। पैदल चलकर यहाँ तक आने की थकान तक बिसर गए। स्वामी ने सुरत के हरिभक्तों का संदेश श्रीहरि को दिया, और वे भी पलंग से उठकर स्वामी को गले लगाने लगे। स्वामी एक के बाद एक हरिभक्तों के नाम लेते जाते और महाराज उतनी ही बार

उनको गले लगाते रहे। इस प्रकार बाईस बार श्रीहरि ने स्वामी को गले लगाया। फिर तो उनको अधिक परिश्रम न हो, इसलिए स्वामी ने भक्तों के नाम लेने बंद किए। उसी समय साथ में आए हुए स्वामी शांतानंद श्रीहरि को मिलने के लिए नजदीक आए। श्रीहरि ने कहा, 'आप बिना आज्ञा हुए जबरदस्ती आए हैं, इसलिए हम आपको गले नहीं लगाएँगे।'

तब स्वामी ने श्रीहरि को सिफारिश की, 'महाराज, इसने मेरे साथ बरनी उठाने की आदिक बहुत सेवा की है, इसलिए आप उनको लाभ दें तो अच्छा होगा।'

फिर तो स्वामी की इच्छा से श्रीहरि उनको मिले तो सही परंतु कहा, 'मुझे स्वामी को बाईस बार गले मिलने में कठिन नहीं लगा, इतना तुमको एकबार मिलने में भी कठिन लग रहा हैं। क्योंकि तुम बिना आज्ञा के यहाँ आए हैं।' इस प्रकार श्रीहरि ने स्वामी के दृष्टांत से आज्ञापालन की महिमा समझाई।

10. देह का अनादर

संवत् 1870 में दादाखाचर के पिता एभलखाचर अक्षरवासी हुए। अत: उनकी श्राद्ध-तर्पणादि क्रिया के निमित्त प्रतिदिन साटे-जलेबी की रसोई दरबार में होती थी। श्रीहरि स्वयं सब संतों को परोसने के लिए निकलते थे। स्वामी भी संतो की भोजन-पंक्ति में बैठकर श्रीहरि की मूर्ति का सुख लेते हुए जो कुछ पात्र में आए, उसे अंगीकार कर लेते थे। श्रीहरि ने भी सब संतों के साथ स्वामी को भी बहुत भोजन परोसा। परंतु प्रतिदिन भोजन में अधिक प्रमाण में शक्कर होने से स्वामी का शरीर पीला पड़ गया। उनकी पाचनप्रक्रिया मंद हो गई। केवल दूध ही अनकूल रहता था, उसके सिवा और कुछ पचता नहीं था। इसलिए श्रीहरि ने उनको केवल दूध पीने की संमति दी।

ऐसी शारीरिक प्रतिकूलता होते हुए भी कृपानंद स्वामी के मंडल में स्वामी नाघेर प्रदेश में, ऊना गाँव की ओर भ्रमण करने लगे। यहाँ तो भोजन में दूध के साथ खोपरा भी लेते थे। अत: अधिक अशक्त रहने लगे। परंतु उन्होंने अपने देह की परवाह नहीं की। एकबार कोवैया गाँव

की सीमा पर एक कुएँ के पास श्रीहरि ने स्वामी को जोगी के वेश में दर्शन दिए और कहा, 'साधुराम, पेट बहुत बड़ा दिखता हैं। दूध अधिक पीया गया है क्या? हमको तो आपके शरीर की चिंता है।' इतना कहकर वे अदृश्य हो गए। श्रीहरि की इस सूचना को उनकी ही अनुवृत्ति समझकर स्वामी ने जीवन पर्यंत दूध पीना छोड़ दिया!

थोड़े समय के बाद कृपानंद स्वामी के साथ स्वामी गढ़डा पधारे। यहाँ महाराज ने उनको दाल और बाजरे का सोगरा खिलाया। परंतु उड़द की दाल में मीर्ची तेज़ डलवाई और उपर से मीर्ची की चटनी भी भोजन में दी। स्वामी को इतना तीखा खाने की आदत नहीं थी, इसलिए उनको बराबर दस्त लग गया। वे तो घेला नदी के तट पर ही सो रहते, शौच जाकर नदी में ही स्नान कर लेते। इस प्रकार तीन दिन तक चला। शरीर की सारी कमजोरी दूर हो गई। फिर स्वामी श्रीहरि के दर्शन करने आए। अपने प्रिय भक्त को निरामय देखकर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए। इस प्रकार श्रीहरि स्वयं स्वामी की देह की संभावना रखते थे।

11. श्रेष्ठवक्ता

सरल प्रकृति के होने पर भी स्वामी व्यावहारिक बाबत में भी अति कुशल थे। उपदेशक के रूप में वे श्रेष्ठ वक्ता भी थे। उनकी उपदेश की शैली चोटदार थी। अपने इष्टदेव की अपार महिमा से सराबोर, पराभक्ति के साथ साथ धर्म, ज्ञान, वैराग्यादि गुणों का पोषण करती स्वामी की वाणी गंगा के अविरत प्रवाह के समान बहती रहती।

एकबार गढ़डा में स्वामी ने महाराज से चार प्रश्न पूछे, 'भगवान का अखंड ध्यान करना, आत्मारूप होकर रहना, बीमारों की सेवा करना और बातें करना, इन चारों में कौन सा साधन श्रेष्ठ है?'

श्रीहरि ने यह पश्न सब संतों को पूछा। सबने अपनी रुचि अनुसार भिन्न भिन्न उत्तर दिए। श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी को भी यह प्रश्न सुनाया। उन्होंने ध्यान करना श्रेष्ठ बताया। जब कि श्रीहरि का अभिप्राय कुछ ओर था। उन्होंने स्वयं यह उत्तर दिया कि 'महिमा की बातें करना सब से श्रेष्ठ है! अन्य जो तीन साधन हैं, वे तो केवल अपने कल्याण के लिए ही

कामयाब होते हैं, जब कि चौथा साधन कथावार्ता करना तो श्रोता और वक्ता दोनों के लिए कल्याणकारी है।' इस प्रसंग से स्वामी ने बातें करने का निश्चय कर लिया। श्रीहरि के महिमा की बातें उन्होंने इतनी दृढ़ता के साथ कही है, कि आज तक किसी सद्गुरु संत की ऐसी बातें संकलित रूप में नहीं मिल पाती!

•

श्रीहरि जब गढ़डा में बिराजते थे, तब नित्य प्रति नई लीला करते और भक्तों को सुख देते रहते। गुणातीतानंद स्वामी भी यहाँ आए थे। इसलिए अपने उत्तम भक्त के महिमा गान के प्रसंग श्रीहरि स्वयं उपस्थित करते।

एकबार श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी, आनंद स्वामी, गुणातीतानंद स्वामी आदि अठारह सद्गुरुओं को दरबारगढ़ में भोजन का निमंत्रण दिया। सबको वर्तुलाकार में एक साथ बिठाकर श्रीहरि स्वयं परोसने लगे और सभी से कहा, 'जिस प्रकार ये गुणातीतानंद स्वामी भोजन करते हैं, उसी प्रकार आप सब भोजन करना सीखे !'

तब ब्रह्मानंद स्वामी मर्म में बोले, 'ये साधु भोजन करना अच्छा जानते हैं!'

यह सुनकर श्रीहरि बोले, 'आप जैसा समझते हैं, ऐसा नहीं है। क्योंकि वे साधु तो मेरी मूर्ति का ही स्वाद लेते हैं और जैसे कोठी (घड़ा) में दाना भरते हैं, वैसे वे अनाज पेट में भरते हैं! और वे अपना सामर्थ्य छिपाकर रहते हैं, वरना हमारे पीछे जितने मनुष्य फिरते हैं, उतने ही मनुष्य उनके पीछे फिरे ऐसे ये महान संत है!'

श्रीहरि का अभिप्राय सुनकर ब्रह्मानंद स्वामी ने कहा, 'जी महाराज! ये तो बहुत बड़े साघु है।'

ऐसी ही एक अन्य घटना है : एकबार श्रीहरि पंचाला गाँव में संतों को भोजन करवा रहे थे। तब आत्मानंद स्वामी और कृपानंद स्वामी इन दोनों के बीच स्वामी भी भोजन करने बैठे थे। यह देखकर श्रीहरि हँसते हुए बोले, 'अरे वाह, ये तो दो बाघ के बीच बकरी!' फिर मोतैया के चार लड्डू हाथ में लेकर वंथली गाँव के कल्याणभाई के सामने देखा और श्रीहरि बोले, 'कल्याणभाई, इन साधु को पहचानते हैं? ये तो हमारा अक्षरधाम है! इनको पहचान रखना।'

ऐसा कहकर स्वामी के पात्र में चार लड्डू रख दिए। कल्याणभाई और वहाँ खड़े दूसरे हरिभक्तों को भी स्वामी के स्वरूप का निश्चय हो गया।

12. सेवावृत्ति

एकबार श्रीहरि गढ़डा से कारियाणी पधारे। यहाँ से उनको वरताल रामनवमी के उत्सव पर जाना था। परंतु यहाँ उन्नीस संत बीमार हो गए थे। उन्होंने कहा, 'जो कोई इन संतों की सेवा में रहेंगे, उनको मैं एक सौ उत्सवों का फल दूँगा!' परंतु श्रीहरि का लाभ छोड़कर इन बीमारों की सेवा में रहने कोई तैयार नहीं हुए। श्रीहरि की अनुवृत्ति समझानेवाले एक गुणातीतानंद स्वामी तैयार हुए। श्रीहरि खूब प्रसन्न हुए और बोले, 'धन्य है इन साधु को! मेरे वचन को नीचे नहीं गिरने दिया।'

फिर श्रीहरि तो वरताल के लिए निकल गए, स्वामी ने संतों की अत्यंत महिमापूर्वक सेवा की। स्वामी की सेवा से सब संतों का स्वास्थ्य जल्दी से सुधर गया। स्वामी ने सब के पास उत्सव पर जाने की अपनी इच्छा बताई। सभी संतों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वामी को उत्सव पर जाने की अनुमति दी। और अपनी और से श्रीहरि को गले लगाने का प्रस्ताव भी रखा! स्वामी तो श्रीहरि का स्मरण करते हुए वरताल पहुँच गए। वे श्रीहरि की आज्ञानुसार बीमार संतों की सेवा करके आए थे, अतः श्रीहरि अत्यंत प्रसन्न हुए और स्वामी को उन्नीस बार गले लगाया।

•

स्वामी पहले से मुक्तानंद स्वामी के मंडल में थे। परंतु कृपानंद स्वामी, भाई आत्मानंद स्वामी, बड़े रामदास स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी आदि सद्गुरु स्वामी को अपने मंडल में रखने की इच्छा करते थे। क्योंकि स्वामी का अपूर्व सेवाभाव, नम्रता, विवेक और निरंतर कथावार्ता करने की लगन हृदय- स्पर्शी थी। आत्मानंद स्वामी का नादुरस्त स्वास्थ्य होने के कारण स्वामी ने उनकी सेवा बहुत प्रेमभाव से की थी। फिर कृपानंद स्वामी के मंडल में भी सेवा करने लगे थे।

कृपानंद स्वामी को श्रीहरि के प्रति अत्यंत प्रीति थी। वे किसी भी प्रकार का आज्ञालोप बरदाश्त नहीं कर पाते थे। यदि कोई सत्संग-मर्यादा

की अवहेलना करते, तो उनको वे अति स्पष्टरूप से सुधार की दिशा बता देते थे। अति धैर्यशील और गुणग्राही साधु ही उनके मंडल में रह सकते थे। स्वामी भी इसी कारण उनके मंडल में रहना अधिक पसंद करते। कृपानंद स्वामी के साथ स्वामी गाँव गाँव फिरते थे, तब एकबार स्वामी से किसी ने पूछा, 'आप कृपानंद स्वामी के साथ रहना क्यों पसंद करते हैं?'

तब स्वामी ने कहा था, 'जब तक व्यक्ति महानपुरुष के कठोर वचनों को सहन नहीं करता, तब तक उनमें कभी अच्छे गुण नहीं आते और बिना कहे मनुष्य को अपने दोष नहीं दिखाई देते। परंतु जो गुरु की आज्ञा के अनुसार रहता है, उनमें महानपुरुष के गुण आते हैं। कृपानंद स्वामी ऐसे स्पष्टवक्ता होने से मैं उनके पास रहना अधिक पसंद करता हूँ।'

13. क्षमाशील

कृपानंद स्वामी के साथ परिभ्रमण करते करते स्वामी और संतवृन्द शेत्रुंजी नदी के तट पर 'जूना सावर' गाँव में आ पहुँचे। धीरे धीरे बरसती बारिश में संतों गाँव में भिक्षा माँगने निकले। गाँव के जमींदार ठाकुर उगा खुमाण भेखधारी वैरागीयों के शब्दों से सत्संग का द्वेषी बन गया था। उनको पता चला कि गाँव में स्वामिनारायण के मुंडिये (संत) आए हुए हैं, अतः उन्होंने अपने आदमी को आदेश दिया कि 'उन संतों को गाँव के बाहर निकाल दो, कुछ लड़के को कहो कि उन पर गोबर-कंकड़ डाले, ताकि दूसरी बार इस गाँव की दिशा ही भूल जाए!

दरबार का आदेश होते ही उनके नौकरों ने संतों को भिक्षा माँगते ही घेर लिया। उनको गाँव के बाहर ले जाने के लिए नौकरों ने लड़कों के पास उन पर गोबर और कंकड डलवाये, बूरी तरह पीटाई करवाई। परंतु स्वामी और संत बिलकुल मौन रहे! इतना ही नहीं मन में उनके अहित का चिंतवन भी नहीं किया!

निर्वैरी और चींटी जैसे जीव को भी दुःख नहीं देनेवाले ये संत श्रीहरि का भजन करते करते गाँव के बाहर आए, और नदी के तट पर एक वृक्ष के नीचे बैठे। क्या उनकी सहनशीलता! कोई मुमुक्षु कदाचित् यदि किसीके शब्द सहन कर सकते, परंतु इतना तिरस्कार और मार सहन

करना अत्यंत कठिन हैं।

शिक्षापत्री में श्रीहरि ने संतों को आदेश दिया है कि,

गालिदानं ताडनं च कृतं कुमतिभिर्जनैः।
क्षन्तव्यमेव सर्वेषां चिन्तनीयं हितं च तैः।।

श्रीहरि के इस आदेश का संतों ने अक्षुण्ण पालन किया। ठीक उसी समय गाँव के लोग नदी तट पर पानी भरने जाते थे। उन्होंने ये देखा, और आपस आपस में बातें करने लगे, 'अरे, यह दरबार कितना निर्दय है। ये बेचारे निर्दोष साधुओं को अपमान करके, मार मारके बाहर धकेल दिया, भगवान इनको पुत्र क्यों देंगे? यह नि:संतान है, और नि:संतान ही मरेगा!'

संतों ने यह बात सुनी और स्वामी ने सोचा कि दरबार बिलकुल अज्ञान की जड़ता के कारण द्वेष करता रहा है, किन्तु आज हम संकल्प करेंगे कि, उनके घर पुत्र का जन्म हो और वह पुत्र सत्संगी बनकर संतों को उनके घर निवास करवाए! स्वामी का यह विचार सुनते ही कृपानंद स्वामी और सभी संत मन ही मन अत्यंत प्रसन्न हुए। इस प्रकार उगा खुमाण को आशिष देकर संतमंडल वहाँ से दूसरे गाँव चला गया। समयांतर से यह संकल्प पूर्ण हो गया, और उगा खुमाण के घर पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम पड़ा जईता खुमाण! और उसने अपने घर स्वामी की पधरावनी भी कराई।

14. 'हमारे तिलक'

एक बार स्वामी और संतमंडल कृपानंद स्वामी के साथ पंचाला पहुँचे। उस समय श्रीहरि वहीं बिराजमान थे, वहाँ पुष्पदोल का उत्सव मनाने अनेक संतों के मंडल इकठ्ठे हुए थे। श्रीहरि ने सभा में सब संतों को इस गाँव की मिट्टी के टुकड़े दिए। यह मिट्टी चंदन जैसी थी, इससे सबको श्रीहरि ने तिलक करने का आदेश दिया।

दूसरे दिन सुबह देखा तो किसी के भाल पर तिलक था ही नहीं! श्रीहरि ने कारण पूछा तो बताया गया कि हम तिलक करें तो भी किस से करें ? श्रीहरि ने आश्चर्य से पूछा, 'मैं ने आपको कल मिट्टी के टुकड़े तो दिए थे !' संतों को अब मालूम हुआ कि उन टुकड़ों का उपयोग तिलक करने के लिए करना चाहिए था, वे तो उन्हें प्रसाद मानकर खा गए थे !

संतों ने प्रणाम करके निर्दोषभाव से बात बता दी, तो श्रीहरि भी बहुत हँसे, और सबको पुन: मिट्टी के टुकड़े दिलवाये।

दूसरे दिन सब विविध प्रकार के तिलक लगा कर आ गए। महाराज ने हँसकर सबको एक ही प्रकार का चिह्न करने का आदेश दिया, और स्वयं उठकर गुणातीतानंद स्वामी के पास आए, उनके भाल में अपने हाथों से सुंदर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाया। और उसके बीच कुमकुम का टीका लगाया। फिर स्वामी की विशेष पहचान कराने के अंदाज से श्रीहरि ने कहा, 'देखो, ये हमारे तिलक !' और आगे कहते चले, 'मेरे जैसा कोई भगवान नहीं है, और इनके जैसे कोई साधु नहीं है।' इस प्रकार अपने पुरुषोत्तम स्वरूप की अद्वितीयता तथा स्वामी के अक्षरस्वरूप की विशिष्टता महाराज ने सहजरूप से समझाई। संतों ने श्रीहरि के इन महिमा सभर शब्दों को हृदयस्थ कर लिए।

15. एकात्मभाव

एकबार गढ़डा में अक्षरकुटिर में सभा हो रही थी। मुक्तानंद स्वामी, गोपालानंद स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी, शुकमुनि स्वामी, मूलजी ब्रह्मचारी आदि संत श्रीहरि के समक्ष उपस्थित थे। तब गुणातीतानंद स्वामी, कृपानंद स्वामी के साथ घेला नदी पर स्नान करने गए। स्नान करते स्वामी का एक पाँव दो पत्थरों के बीच फँस गया। जो किसी प्रकार के प्रयत्न से भी निकल नहीं रहा था। अचानक उनको श्रीहरि ने दर्शन दिए और स्वामी से कहा, 'धीरे से पाँव निकाल लो।' स्वामी जिस समय अपना पाँव निकालते थे, ठीक उसी समय श्रीहरि सभा में बैठे बैठे वही बचन बोल रहे थे, जैसे कुछ घटना देख रहे हो! श्रीहरि की बिना अनुसंधान की बात सुनकर ब्रह्मानंद स्वामी ने महाराज से उसका कारण पूछा। तब श्रीहरि ने बताया कि 'मेरा पाँव निकालिए वरना वह टूट जाएगा।'

मूलजी ब्रह्मचारी बोले, 'महाराज, आप तो अभी पलंग पर बैठे हैं, तो यहाँ पाँव कैसे टूटेगा ?'

महाराज हँसते हुए बोले, 'हमारा धाम जो गुणातीत हैं, उनका पाँव घेला नदी में दो पत्थरों के बीच फँस गया था, जो बड़ी मुश्किल से

निकल पाया।'

इस प्रकार श्रीहरि ने अपने धामरूप अक्षर गुणातीतानंद स्वामी के साथ अपना एकात्मभाव बताया।

16. सूक्ष्म तप

स्वामी को देह का अत्यंत अनादर था। अतः वे अपनी देह को हमेशा कष्ट देते रहते। वे संत मंडल के साथ गाँव गाँव जहाँ भी विचरण करते थे, वहाँ मंडल के लिए भिक्षा माँगने जाते थे। भिक्षा में जो कुछ मिलता था, उसमें से मंडल के बड़े सद्गुरु एवं दूसरे साधुओं को वे पहले भोजन करवाते और अंत में शेष बचता वह स्वयं लेते थे। कईबार तो भूखा भी रहना पड़ता था। परंतु वे किसीको इसका पता भी चलने नहीं देते। उन्होंने अपनी कमर पर एक डोरी बांध रखी थी, जिससे शरीर पर थोड़ा भी मोटापा हो जाए तो तपस्या करके शरीर को कम कर सके!

एकबार बड़े रामदास स्वामी की विनती से श्रीहरि ने स्वामी को उनके साथ विचरण करने भेजे। किसी एक गाँव में दो-तीन संत बीमार हो गए। अतः वहाँ थोड़ा अधिक रुकना पड़ा। इन संतों के लिए पथ्य खुराक था चावल और मोठ! एक हरिभक्त ने बीमार संतों को मोठ ला दिए। किन्तु मोठ बहुत अधिक मात्रा में लाए थे, अतः मंडल के सब साधु को पुनः एकबार बांटे! फिर भी एक सेर मोठ बचे। रामदास स्वामी इसकी व्यवस्था करने की चिंता में पड़े। क्योंकि महाराज ने अपरिग्रह का व्रत दिया था। अतः इसका सायंभोजन के लिए संग्रह करना भी तो आज्ञालोप ही था! रामदास स्वामी ने संतों से विनती की, यदि ये मोठ आप में से कोई खा जाए तो अच्छा है।

तब हमेशा भूख सहन करनेवाले स्वामी बोले, 'यदि आपकी इच्छा हो तो मैं यह मोठ खा जाऊँ?' ऐसा कहकर स्वामी ने वह सारे मोठ खा लिए।

यह देखकर रामदास स्वामी ने कहा, 'अहो, साधुराम! क्या आप रोज इतनी भूख सहन करते हैं?' सब संतों ने सोचा, 'स्वामी हरदिन कितनी तपस्या करते हैं!'

•

महाराज वरताल में हरिनवमी के उत्सव के बाद उमरेठ पधारे। यहाँ नंदराम ठाकर के वहाँ श्रीहरि ने सबको अपने हाथों से रोटी और आमरस का भोजन करवाया। भोजन के बाद महाराज ने आम के पेड़ की छांव में सभा का आयोजन किया।

चैत्र महीना होने से कड़ी धूप से सब संत व्याकुल थे। और ऊपर से श्रीहरि ने आदेश दिया, 'संतों, आज आपने लोभी के घर भोजन किया हैं, अत: खड़े खड़े कीर्तन बोलो ! ताकि खाना पच जाए।'

जब बैठना भी कठिन था तो फिर खड़े होकर कीर्तन बोलने को कौन तैयार होता? परंतु देह का अनादर दृढ़ करके आत्मनिष्ठा धारण करनेवाले स्वामी खड़े हुए। और एक के बाद एक कीर्तन बोलने लगे। वैसे करीब दो घंटे तक कीर्तनभक्ति चलती रही। श्रीहरि की इच्छा से आकाश में बादल छा गए और सभा समाप्त होते ही तुरंत बारिश बरसने लगी! अपनी आज्ञा से लगातार कीर्तन किया तो श्रीहरि भी स्वामी पर खूब प्रसन्न हुए और बोले कि, 'आपकी भक्ति से ही बारिश बरसी है !'

17. विरक्ति

घरमपुर (जिला: वलसाड़) राज्य की राजमाता कुशलकुंवरबाई के आग्रह से श्रीहरि मुक्तानंद स्वामी आदि संत-हरिभक्तों के संघ के साथ वरताल से घरमपुर जा रहे थे। रास्ते में अचानक सुरत शहर में देवानंद स्वामी बीमार हो गए। उनको पेट का दर्द (अतिसार) हो गया था। उनको वहीं रुकना पड़ा। परंतु उनकी सेवा में किसको रखें? क्योंकि श्रीहरि का लाभ छोड़ना भला कौन चाहेगा?

ऐसे प्रसंगों पर श्रीहरि की दृष्टि हमेशा स्वामी पर रहती। उन्होंने कहा, 'हमारे निर्गुणानंद कहाँ है? उनको बुलाईए। वे हमारी आज्ञा मानेंगे।'

श्रीहरि का आदेश होते ही स्वामी, देवानंद स्वामी की सेवा में रुक गए। श्रीहरि धरमपुर पधारे। स्वामी ने अत्यंत महिमा और प्रेम से देवानंद स्वामी की सेवा की। उनका स्वास्थ्य ठीक हो गया। श्रद्धापूर्वक की हुई स्वामी की सेवा से देवानंद स्वामी खूब प्रसन्न हुए, और बोले, 'आपने मेरी खूब सेवा की, इसलिए मैं आप पर प्रसन्न होकर श्रीहरि का यह वस्त्र

प्रसाद रूप में देता हूँ और जो मेरी गानविद्या है, वह भी मैं आपको सीखाना चाहता हूँ।'

परंतु श्रीहरि की प्रसन्नता के सिवा अन्य पदार्थ में विरक्त और निःस्पृही ऐसे स्वामी ने विनम्रता से कहा, 'मैंने तो केवल महाराज को प्रसन्न करने के लिए आपकी सेवा की है। और वह प्रसादी का वस्त्र मेरे से संभल नहीं सकेगा, अतः वह आपके पास ही रहे, वह सर्वथा उचित होगा। और सुबह सुबह महाराज का ध्यान छोड़कर गानविद्या के सूर बजाना वह मुझे नहीं भाएगा!' इस प्रकार विनयपूर्वक देवानंद स्वामी को समझाकर स्वामी श्रीहरि के दर्शन के लिए घरमपुर पहुँच गए।

•

श्रीहरि चैत्रीपूर्णिमा उत्सव के बाद संजाया गाँव पधारे। यहाँ स्वामी को बुलाकर उनको संत मंडल की जिम्मेदारी सौंपी और मंडल के साथ गाँव-गाँव भ्रमण करने का महाराज ने आदेश दिया। स्वामी तो मौन रहकर श्रीहरि की इस लीला को निहारते रहे। फिर तो उन्होंने स्वयं स्वामी के साथ चार साधु का मंडल बना दिया। उस समय त्यागियों को किसी की जोड़ में चलने का नियम नहीं था, फिर भी स्वामी हमेशा जोड़ लिए ही फिरते थे, कदाचित् बिना जोड़ भी अकेले रह गए तो महाराज की मर्जी के अनुसार वे उपवास कर लेते।

18. वेदांतियों का पराजय

उत्सव समाप्त होते ही सभी हरिभक्त अपने अपने स्थान चले गए। किन्तु महेमदाबाद के हरिभक्तों ने महाराज से निवेदन किया कि 'महाराज! हमारे गाँव में किसी विद्वान संत को भेजें, ताकि वेदांतियों की परेशानी दूर हो ओर गाँव में सत्संग की अभिवृद्धि हो।'

महेमदाबाद में वेदांतियों का प्रभाव खूब था। वे अपने वेदांत के मिथ्या ज्ञान के बल पर किसी को सत्संग से जुड़ने नहीं देते थे। श्रीहरि ने विद्वान संतों को वहाँ जाने के लिए पूछा, पर कोई तैयार नहीं हुए। आखिर महाराज ने स्वामी को आज्ञा दी और हरिभक्तों के साथ उनको महेमदाबाद भेजे।

स्वामी महेमदाबाद पधारे हैं, वह समाचार शुष्क वेदांत के

मिथ्याभिमानी ज्ञानियों को मिला। वे शास्त्रचर्चा में स्वामी को पराजित करने के लिए ही मंदिर में आए। मंदिर में सभा का सुंदर आयोजन हुआ। उन सबके प्रति स्वामी ने कहा, 'पंडितों, आप केवल शब्दब्रह्म को जानकर 'अहं ब्रह्मास्मि' बोलना सीखे हैं। आपने न तो ब्रह्मभाव को प्राप्त किया और न तो परब्रह्म को पहचाना! भाईयों! ब्रह्मभाव तो शुकजी ने प्राप्त किया था, जो स्त्री–पुरुष के भाव से परे थे। शुकजी में ब्रह्म की व्यापक शक्ति थी, अतः जब व्यासजी ने उनको बुलाया, तब वृक्ष में प्रवेश करके उन्होंने उत्तर दिया था। यदि आप पूर्ण रूपेण ब्रह्म हो तो आईए, इस स्तंभ में प्रवेश करके मुझे उत्तर दीजिए।'

'परंतु अब तक ऐसी ब्रह्मदशा तो सिद्ध हुई नहीं हैं तथा संसार की लोलुपता भी ऐसी ही बनी रही है। और एक दमड़ी (पैसा) के कारण अनेक प्रपंच खेलने पड़ते हैं, अनेकों के साथ शत्रुता–मित्रता करनी पड़ती हैं, शरीर से अहंभाव नहीं मिटा हैं। 'मैं और मेरा' मिटा नहीं है, रसास्वाद में आसक्ति है, कठिन–कोमल स्पर्श में समानबुद्धि नहीं हुई हैं, उत्तम रूप में राग रहता हैं, मधुर शब्द की ओर श्रोत्र इन्द्रिय आकृष्ट हो जाती है, तब तक आप केवल तोते की तरह, 'अहं ब्रह्मस्मि' बोलते रहेंगे परंतु वास्तव में आप ब्रह्म नहीं है!

'न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति।

'जो आत्माराम है, उसे मृगतृष्णा के समान पंचविषय पराभव नहीं कर सकते। जब आप ऐसी स्थिति प्राप्त करेंगे, तब आप को सांसारिक लोग अपने आप ब्रह्म समझेंगे। शुकजी और जडभरत कहाँ किसीको कहने गए थे? परंतु सारा जगत उनकी ब्रह्मस्थिति को पहचान गए थे। जहाँ पर अपूर्णता है, वहाँ जरूर अहंकार होता है। इसलिए जब तक आप 'अहं ब्रह्मस्मि' बोलते है,, तब तक आप अपूर्ण हैं। अरे, आप केवल शब्द मात्र के उपासक हैं।

श्रीकृष्ण भगवान ने श्रीमद्‌भगवद् गीता में कहा है:

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।[3]

---

3. जो अपने सुख–दुःख के विचार के साथ अन्य के भी सुख–दुःख के विचार करते हैं, और जिसकी सर्वत्र समभाव की दृष्टि है, वही, हे अर्जुन ! परमयोगी है ।

'क्या आप ऐसे हुए हैं? क्या आपको सबके सुख-दुःख में सहभागी होने का मन होता हैं? यदि किसी का पुत्र मर जाए तो वहाँ ब्रह्मोपदेश देने तैयार हो जाते हैं, और आपकी केवल बकरी मर जाती है, तो आप रोना-धोना बंद नहीं कर सकते !

'ऐसे दांभिक पंडितों की पंडिताई अब नहीं चलेगी। स्वामिनारायण स्वयं परब्रह्म है और उनके भजन से अनेक मुमुक्षु ब्रह्मरूप हुए हैं, होते हैं, और भविष्य में होंगे। अतः दंभ छोड़ दो, आपको वास्तव में असली ब्रह्म होना हैं, तो मैं आपको उन परब्रह्म से मिला दूँ। चाहे आप कितने ही पुस्तक पढ़ो, विचार करो, परंतु स्वामिनारायण परब्रह्म का आश्रय किए बिना आप ब्रह्मभाव को कभी नहीं पाएँगे! अनादि ब्रह्म तो मैं हूँ, जो अनंतकोटि ब्रह्मांडों को धारण कर रहा हूँ !'

ऐसा कहकर स्वामी ने अपने शरीर से इतना प्रकाश निकाला कि वहाँ बैठे शुष्क ज्ञानी सब स्तंभित रह गए। स्वामी जिस मकान में बैठे थे वह चैतन्य-सजीव होकर हिलने लगा। पंडित भयभीत होकर चित्कार करने लगे, 'ये मकान अभी गिरेगा। हमें बचा लो!' उनको ऐसे धबराए हुए, देख स्वामी ने हँसते हुए कहा, 'डरो मत, यह मकान गिरनेवाला नहीं है! लेकिन यदि आप असल में ब्रह्म हो तो इस प्रकाश को शांत कर दो!' किन्तु सभी असमर्थ रहे और स्वामी ने भी कृपा करके वह तेज अपने में समा लिया।

सभी एक साथ बोले उठे, 'हम ब्रह्म तो हैं, परंतु परब्रह्म तो स्वामिनारायण हैं। इसलिए यदि आप यह सच मानते हैं, तो उनके दर्शन को चलें।'

कुछ तो स्वामी का ऐसा प्रभाव देखकर, उनके चरणों में समर्पित होकर उनके शिष्य बन गए। और कुछ तो पराजित होकर घर चले गए। तब से वे मानने लगे कि स्वामिनारायण के त्यागीवर्ग में ऐसी दिव्य विभूतियाँ भी हैं।

19. मूर्ति में आसक्त

स्वामी विचरण करते हुए श्रीहरि के पास गढ़डा पधारे। वहां आषाढ शुक्ला एकादशी के उपवास के दूसरे दिन श्रीहरि वासुदेवनारायण के कमरे

में खिचड़ी और दही का भोजन ले रहे थे। दर्शन के लिए समीप में ही बैठे हुए संतों को श्रीहरि की प्रसादी प्राप्त करने का संकल्प हुआ। एकमात्र गुणातीतानंद स्वामी संकल्प रहित श्रीहरि की मूर्ति के दर्शन कर रहे थे। अंतर्यामी श्रीहरि सब कुछ जानते थे कि गुणातीतानद स्वामी प्रसाद के लोभ से नहीं, पर केवल मूर्ति के दर्शन के लिए ही यहाँ बैठे हैं। अत: महाराज ने सामने से उनको बुलाकर अपने थाल में से प्रसाद दिया। महाराज और स्वामी का अटूट प्रेम संबध का अनुभव करके सभी संत चकित रह गए।

इस समय अक्षरकुटिर में श्रीहरि और महान सद्‌गुरुओं की उपस्थिति में गीता पर रामानुज भाष्य की कथा हो रही थी। पुराणी ने सुंदर कथा की, तो श्रीहरि ने प्रसन्न होकर उनको गले लगाया। अत: ब्रह्मानंद स्वामी ने चुहुल करते हुए कहा कि 'महाराज, आप ऐसा पक्षपात करें वह कैसे चलगा? कथा में जो भी बैठे हैं, उन सबको गले लगाना चाहिए।'

श्रीहरि इस विषय पर तुरंत संमत हो गए। यह समाचार सुनते ही दूसरे दिन कथा में हल्ला मच गया। श्रीहरि ने नित्यानंद स्वामी से कहा, 'ये सब कथा में आए हैं, उन सबसे पूछो तो सही कि कथा में वे कुछ समझते हैं या नहीं?

कथा समाप्त होने के बाद नित्यानंद स्वामी एक-एक से पूछने लगे, और जो नहीं समझते थे उनको दूसरे दिन कथा में आने से मना कर दिया। उन्होंने जब स्वामी से पूछा, तब स्वामी तो भाव में आकर बोले, 'अहो, 'क्या कथा है! न भूतो न भविष्यति!' इतने शब्दों से ही उन्हें कथा में बैठने की अनुमति मिल गई।

फिर मुक्तानंद स्वामी ने सहजभाव से पूछा कि, 'गुणातीत, क्या आप वास्तव में सब कुछ समझते हैं ?'

तब स्वामी अपनी मस्ती में बोल उठे, 'मुझे तो मात्र महाराज की मूर्ति के दर्शन का मोह है।' दर्शन की इतनी महिमा देखकर मुक्तानंद स्वामी मन ही मन अत्यंत प्रसन्न हुए।

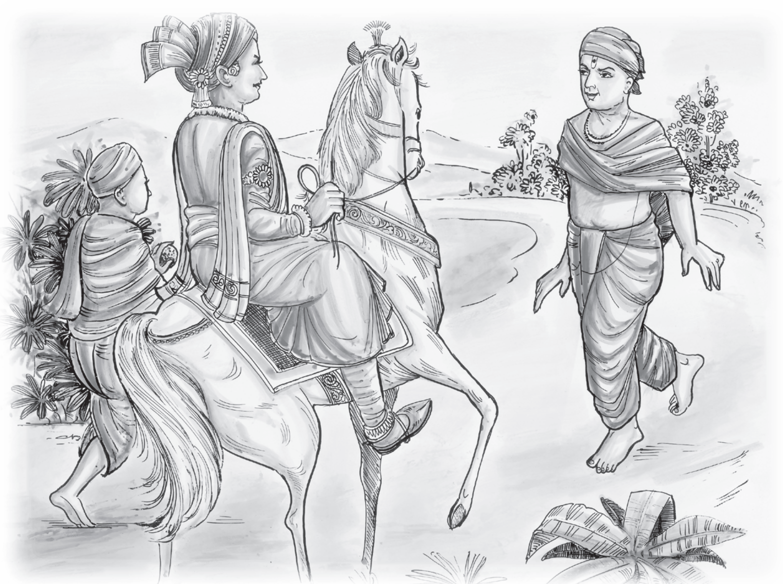
20. अप्रतीम श्रद्धा

ब्रह्मांड के असंख्य जीवों को पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण का यथार्थ

स्वरूप समझाकर, उनको माया से पर करने के एक मात्र उद्देश्य से, पृथ्वी पर साकार ब्रह्म के रूप में स्वामी भ्रमण करते थे। उनके जीवन की प्रत्येक घटना श्रीहरि के प्रति उनकी पराभक्ति का सहज दर्शन कराती हैं।

एक बार श्रीहरि संत-हरिभक्तों के साथ गढ़डा से वरताल जाते हुए बरवाला पधारे। यहाँ हरिभक्तों ने महाराज और संतो को पाक के लड्डू दिए। स्वामी के हिस्से में भी एक लड्डू आया। उनको तो उसकी स्पृहा न थी। वे तो बस, एकमात्र श्रीहरि की मूर्ति में ही आसक्त थे। स्वामी को तो हर पल महाराज के दर्शन की ही लगन थी। मूर्ति के रस के आगे शेष सभी रस उनको फीके लगते थे। परंतु श्रीहरि तो घोड़ी पर बैठकर चलते थे, इसलिए उन्होंने सोचा कि मुझे यदि दर्शन का सुख लेना है, तो घोड़ी के साथ साथ दौड़ना पड़ेगा! और त्यागी के नियमानुसार कभी अकेले चला नहीं जाता। अत: जोड़ में एक दूसरे संत का होना जरूरी था, जो दौड़ने की श्रद्धा भी रखता हो।

स्वामी ने एक साधु से विनती करते हुए कहा, 'मुझे महाराज के दर्शन के लिए उनकी घोड़ी के साथ दौड़ना है। यदि रास्ते में आप मेरे साथ दौड़ो तो मैं मेरे हिस्से का लड्डू आप को दूँगा।'



लड्डू की लालच में वह साधु स्वामी के साथ दौड़ने को तैयार हो गए। स्वामी रास्ते में, खेतों में, काँटों में, देह की परवाह किए बिना दौड़ते जाते और श्रीहरि के दर्शन करते जाते। ऐसी अप्रतीम श्रद्धा देखकर महाराज मंद मंद मुस्कुराते थे।

इस प्रकार जब दूसरा गाँव आया तब तक स्वामी श्रीहरि के दर्शन के लिए दौड़ते ही रहें। कैसी विरल श्रद्धा!

21. अनादि के सेवक

वरताल में एकबार श्रीहरि की आज्ञा से स्वामी कुछेक बीमार संतों की सेवा में रहे थे। सेवा के समय प्रत्येक की इच्छा अनुसार भोजन बनाना, कपड़े धोना, और सबकी गुदड़ियाँ भी धो देना स्वामी की सेवा थी। स्वामी को सेवाभावी समझकर कुछेक अन्य संतों ने भी अपनी गुदड़ियाँ स्वामी को दे दी, ताकि वे घोकर वापस दे! करीब अठारह गुदड़ियाँ इकठ्ठी हुई थीं। सब गोमती तालाब में धोकर उसे कंधे पर उठाकर स्वामी मंदिर आ रहे थे। परिश्रम से पसीना और गीली गुदड़ियाँ के टपकते पानी से स्वामी का शरीर लथपथ था। ठीक उसी समय श्रीहरि वासण सुतार के घर भोजन लेकर हनुमान द्वार पर आए। स्वामी तो श्रीहरि के अपलक दर्शन करते हुए उनकी मूर्ति में एकाग्र हो गए! श्रीहरि भी स्वामी की स्नेह-डोरी से बंधकर वहीं स्थिर हो गए!

भक्त और भगवान के अलौकिक दृष्टिमिलन में कुछ पल बीत गई, तब श्रीहरि ने पूछाः 'साधुराम, अब हम चलें ?' स्वामी ने तुरंत ही स्मित करते हुए अपनी वृत्ति समेट ली, श्रीहरि सभा में पधारे, सिंहासन पर बैठते ही सबको लगा कि श्रीहरि कुछ कारण से व्याकुल हो रहे हैं।

सेवक तुरंत उनको पंखा डालने लगे, तो किसीने ठंडा पानी लाकर श्रीहरि को दिया। तब श्रीहरि ने कहा, 'मुझे अब कुछ नहीं चाहिए, परंतु उन साधु के कंधे पर गुदड़ियों का बोज है, उसे पहले उठा लो !'

भगुजी ने दौड़कर वह बोज उठा लिया, तब श्रीहरि ने चैन की सांस ली! इस प्रकार स्वामी के साथ श्रीहरि ने अपनी एकता का दर्शन कराया। श्रीहरि ने जिन संतों की गुदड़ी हो उन्हें स्वयं आकर ले जाने आदेश दिया।

बीमार साधु तो अपनी अपनी गुदड़ी ले गए परंतु स्वस्थ होने पर भी स्वामी को गुदड़ी धोने की सेवा दी थी, वे मारे शरम के गुदड़ी लेने नहीं आ सके।

महाराज ने सभा में तुरन्त ही मुक्तानंद स्वामी और ब्रह्मानंद स्वामी आदि वरिष्ठ संतों को बुलवाया, और पूछा, 'ये गुणातीतानंद स्वामी कैसे साधु हैं?'

'वे तो बहुत अच्छे साधु हैं, उनको कीर्तन खूब याद हैं, और वे बातें भी बहुत अच्छी करते हैं! सेवा भी खूब करते हैं, और तपस्वी भी अच्छे हैं।' सद्‌गुरुओं ने कहा।

महाराज ने उनकी अत्यधिक महिमा बताते हुए कहा: 'ये तो आपने



उनके बाहरी गुण कहे, किन्तु वे तो खूब समर्थ साधु हैं, जैसे कोई संडासी में साँप को पकड़कर रखें, वैसे उन्होंने हमारी मूर्ति को तीनों अवस्था में पकड़ रखी हैं।'

यह सुनकर उत्तर हिन्दुस्तानी संत महानुभावानंद स्वामी श्रीहरि के मर्म को बिना समझे ही बोल उठे, 'बेटी का बाप! महाराज को क्यों पकड़ा हैं? छोड़ दो!'

तब श्रीहरि ने उनको समझाया कि 'उन्होंने तो हमें निरंतर अपने बन्धन में रखे हैं। परंतु हमें इसका कुछ दुःख नहीं हैं। हाँ, उनकी तरह दूसरों को इस प्रकार मूर्ति को अपने बन्धन में रखना अति कठिन है। ये साधु तो हमारे अनादि के सेवक हैं। इनके द्वारा ही पूरे सत्संग में हमारी सर्वोपरि उपासना का प्रवर्तन होगा। ये साधु हमारी महिमा जैसी समझते हि ऐसी दूसरे कोई नहीं समझते। अतः ऐसे साधु के पास स्वस्थ त्यागी भी सेवा करवाते हैं, वह क्या उचित है?' इस प्रकार महाराज ने सभी सद्‌गुरुओं को स्वामी की महिमा समझाई।

पहले मुक्तानंद स्वामी अपने पात्र से स्वामी को प्रसाद देते थे पर इस प्रसंग के बाद स्वामी की महिमा जानकर उन्होंने स्वामी के आग्रह होने पर भी प्रसाद देना बंद किया।

•

कृपानंद स्वामी के साथ स्वामी समढियाला गाँव पधारे थे। यहां वीरा शेलड़िया का पुत्र लक्ष्मण, स्वामी को रोज एक प्रश्न पूछता था और स्वामी उस प्रश्न का उत्तर देते थे। एकबार उत्तर देते हुए स्वामी तो महाराज के महिमा की बातों में और श्रीहरि की मूर्ति में भावस्थ हो गए। स्वामी के शरीर से इतना प्रकाश फैला कि लक्ष्मण तो चकाचौंध रह गया। दिव्य तेज में उसको स्वामी की जगह श्रीहरि दिखाई दिए और वह श्रीहरि के चरणारविंद अपनी छाती से लगाने लगा। तब स्वामी बोले, 'अरे, लक्ष्मण, 'यह तू क्या कर रहा है?'

'मैं तो महाराज के चरणारविंद को छाती पर लगाता हूँ, ये तो महाराज हैं, स्वामी, आप कहाँ है?' लक्ष्मण की यह बात सुनते ही सभा में बैठे हुए सब हरिभक्तों को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर लक्ष्मण को टटोलकर

पूछा, उसने पूरी बात बता दीं। सबको प्रतीत हुआ कि श्रीहरि स्वामी में अखंड निवास करके रहे हैं!

सोरठ प्रांत में (जूनागढ़ जिले में) स्वामी ने खूब विचरण किया और सबको महाराज के स्वरूप की दृढ़ निष्ठा करवाई। स्वामी कई बार कहा करते थे कि 'हमने और कृपानंद स्वामी ने खेतों में घूमकर खूब परिश्रम से सत्संग करवाया है। हम जहाँ जहाँ फिरे हैं और सत्संग की जिस प्रकार दृढ़ता करवाई है, तो भक्तों में कहीं भी जादू-टोना करनेवाले झूठे तांत्रिक में से आस्था निकाल दी है, और सबको भगवान में आस्था कराई है।

22. जूनागढ़ में मंदिर निर्माण का प्रारंभ

पंचाला गाँव के ठाकुर झीणाभाई दरबार ने जूनागढ़ में मंदिर करने हेतु अपना दरबार और बाड़ी श्रीहरि को अर्पण किया था। झीणाभाई के अक्षरवास के बाद गढ़डा में श्रीहरि ने प्रस्ताव रखा की जूनागढ़ में मंदिर निर्माण किया जाए, परंतु नागरों की परेशानी के कारण एवं अनेक प्रकार की मुश्किलों के कारण वहाँ जाने के लिए कोई तैयार नहीं था। आखिर श्रीहरि की आज्ञा से स्वामी तैयार हुए। उनके साथ सरकारी काम में सहायता करने हेतु ब्रह्मानंद स्वामी भी भेजे गए। गोपालानंद स्वामी आदि सद्‌गुरुओं की उपस्थिति में संवत् 1882 में वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन जूनागढ़ मंदिर का शिलान्यास हुआ, और ब्रह्मविद्या के केन्द्र स्थान समान भव्य मंदिर का प्रारंभ हुआ।

तत्पश्चात् आनंदस्वामी के साथ स्वामी महाराज के दर्शन करने गढ़डा आए। किन्तु थोड़े दिन के बाद ही श्रीहरि ने उनको जूनागढ़ जाने के लिए आदेश दिया। कारण यह था कि उनके सिवा जूनागढ़ की कठिन परिस्थितियों से झूझने का साहस तथा विपरीत देशकाल को सहने की तैयारी किसी की नहीं थी स्वामी के साथ श्रीहरि ने तत्त्वानंद स्वामी को भेजे। जाने से पहले स्वामी महाराज के आशिष लेने पहुँचे। तब श्रीहरि क्षौरकर्म करा रहे थे। स्वामी ने दंडवत् प्रणाम किया, तो श्रीहरि तुरन्त ही खड़े हो गए और स्वामी को गले लगाकर बोले, 'आप जूनागढ़ जाते हैं, तो हम कुछ पाथेय साथ में बांध देते हैं।' ऐसा कहकर श्रीहरि ने एक साखी कही :

'निर्गुण ब्रह्म सुलभ अति, सगुण न जाने कोई,
सगुण चरित्र नानाविधि, सुनी मुनि मन भ्रम होय।'[4]

फिर अपनी पाघ मँगवाकर स्वामी के सिर पर पहनाई तथा स्वामी के प्रति खूब प्रेम बताया।

23. महाराज जमान हुए

संवत् 1883, प्रबोधिनी एकादशी के उत्सव के बाद श्रीहरि ने परमहंसों को अक्षरकुटिर में बुलाकर सभा की। ब्रह्मानंद स्वामी जूनागढ़ से पधारे थे। पर स्वामी कुछ कारणवश पीछे रह गए थे। श्रीहरि ने सब संतों से कहा, 'आप सब पंचव्रतों का दृढ़ पालन करें और उसके पालन में आप तनिक भी लोप नहीं होने देंगे, इस हेतु आप मुझे आपस आपस में एक दूसरों की जमानत दें।'

श्रीहरि की इस विशिष्ट आज्ञा मिलते ही जिस संत को जिसके साथ अधिक बनता था, उसने उसकी जमानत दी। ठीक उसी समय स्वामी जूनागढ़ से पधारे। उनको देखकर ब्रह्मानंद स्वामी बोले कि ये गुणातीतानंद स्वामी भी आ गए, लेकिन अब उनके साक्षी कौन होंगे? यहाँ तो सब एक दूसरों के जमान बन चूके हैं, अब कोई बाक़ी नहीं हैं !'

तब श्रीहरि ने कहा, 'स्वामी, इनके तो हम हमेशा के जमान हैं !' यह सुनकर पूरी सभा स्तब्ध रह गई। सबके मन में प्रतीति हुई कि स्वामी पर श्रीहरि की खूब प्रसन्नता हैं और परस्पर दोनों का ऐक्य अनन्य है।

24. जूनागढ़ के मंदिर के महंतपद पर

श्रीहरि वरताल पधारे थे। ब्रह्मानंद स्वामी भी जूनागढ़ से पधारे। यहाँ श्रीहरि ने सभी संत-हरिभक्तों की सभा में कहा कि 'हमने जो मंदिर निर्माण किए हैं, उन मंदिरों में एक एक महंत होने चाहिए। वरताल मंदिर के महंत अक्षरानंद स्वामी, भूज के वैष्णवानंद स्वामी, गढ़डा के विरक्तानंद

4. निर्गुण ब्रह्म आज अति सुलभ है, परंतु उनके प्रकट (सगुण) स्वरूप को मायिक जीव नहीं पहचान पाते हैं। क्योंकि उनके मनुष्यचरित्र देखकर बड़े बड़े मुनियों के मन भी भ्रमित हो जाते हैं।

स्वामी, और धोलका के अनिरुद्धानंद स्वामी, इस प्रकार हमने सबके नाम निश्चित किए हैं।'

तब ब्रह्मानंद स्वामी ने कहा कि, 'महाराज! जूनागढ़ में मुसलमानी राज्य हैं, वहाँ के नागर अमलदार शिवपंथी और द्वेषी हैं, और वह प्रदेश भी निर्धन तथा जड़ है। इसलिए वहाँ के महंत सोच समझकर नियुक्त करना।'

महाराज ने कहा, 'ठीक है।'

तत्पश्चात् चैत्री पूर्णिमा के दिन श्रीहरि गढ़डा पधारे। स्वामी भी जूनागढ़ से पधारे थे। श्रीहरि ने ब्रह्मानंद स्वामी को बुलाये और वरताल में जो बात अधूरी रही थी, उसे याद कराते हुए कहा, 'आज हमें जूनागढ़ मंदिर के महंत की नियुक्ति करनी हैं, इसलिए भादरावाले निर्गुणानंद को बुलाईए।' स्वामी आ गए तब श्रीहरि ने उनको मुक्तानंद स्वामी के पास बिठाये। फिर श्रीहरि आसन से उठकर उनके पास आए और अपने गले में जितने हार पहने थे वे तमाम हार स्वामी को पहना दिए। और बोले, 'ये हमारे जूनागढ़ के महंत!' स्वामी घबरा गए और आनाकानी करने लगे।

तब स्वामी के परम सखा गोपालानंद स्वामी ने स्वामी से कहा, 'महाराज ने प्रसन्न होकर आपको पुष्पहार दिया है, तो वह रखना चाहिए।' और श्रीहरि ने भी कहा कि 'गोपालानंद स्वामी भी आपकी सहायता करेंगे, और अखंडानंद ब्रह्मचारी तथा परमानंद स्वामी भी सहाय में रहेंगे।' आखिर स्वामी ने श्रीहरि की आज्ञा शिरोधार्य की।

श्रीहरि ने स्वयं अपने हाथों से अपने वस्त्र प्रसाद के रूप में दिए और स्वामी के सिर पर पाध पहनाकर आशीर्वाद दिए।

25. 'हमारे अक्षरधाम की भेंट'

इस सभा में पीपलाणा के कुरजी दवे उपस्थित थे। उनको श्रीहरि ने कहा, 'जब रामानंद स्वामी भूज नगर से गाँव पीपलाणा पधारे थे, तब उनका संदेश देने के लिए आप लोज गाँव आए थे। शुभ समाचार की बधाई देते हुए मुक्तानंद स्वामी ने आपको रामानंद स्वामी का प्रसादीवस्त्र रुमाल (सिर पर बांधने का) भेंट में दिया था। तब हमने आपसे कहा था कि 'हम आपको हमारा अक्षरधाम भेंट में देंगे।' क्या वह आपको याद हैं?'

'हाँ महाराज!' कुरजी दवे ने कहा। वे तो खुश हो गए कि अब महाराज मुझे कुछ भेंट में देंगे।

किन्तु श्रीहरि ने कहा, 'ये गुणातीतानंद स्वामी हमारा अक्षरधाम हैं, हम उन्हें आपको भेंट में देते हैं! सोरठ प्रांत के सत्संगियों को हम ठीक तरह सुख नहीं दे पाए, इसलिए ये साधु जो हमारा सर्वस्व हैं, हमारा अक्षरधाम हैं, वह हम कृष्णार्पण करते हैं। अतः आप उनकी सेवा-सत्संग करेंगे तो आपका काम बन जाएगा।'

फिर स्वामी की ओर देखकर आशीर्वाद देते हुए श्रीहरि बोले, 'जो कोई आपके साथ जूनागढ़ आकर आपकी इच्छानुसार सेवा करेंगे, उनकी सौ जन्म की या हजार जन्म की कसूर को हम इसी जन्म में मिटा देंगे। इतना काम हम आपका करेंगे।'

इस प्रकार श्रीहरि ने संवत् 1883 की चैत्री पूर्णिमा के दिन स्वामी को जूनागढ़ के मंदिर की महंत पदवी प्रदान की और अपनी अत्यंत प्रसन्नता बताई।

•

देखते ही देखते जूनागढ़ का मंदिर-निर्माण पूर्ण हो गया। नागरों ने इस कार्य में बहुत बाधा डाली, परंतु उनकी एक भी नहीं चली। श्रीहरि की कृपा से मंदिर का कार्य अच्छी तरह संपन्न हुआ।

संवत् 1884 के वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन मंदिर में राधारमणदेव की प्रतिष्ठा धूमधाम से हुई। प्रतिष्ठा उत्सव की सभा में श्रीहरि ने सबको आदेश दिया कि 'यदि कोई प्रति वर्ष स्वामी का सत्संग करने आएँगे उनके सौ जन्म की कसूर मैं इसी जन्म में मिटा दूँगा।' तत्पश्चात् गोपालानंद स्वामी से कहा, 'आप प्रति वर्ष यहाँ आना और एक महीना ठहरना। यदि किसी वर्ष में न आ सके, तो दूसरे वर्ष तो जरूर आना और दो महीना रह कर स्वामी के सत्संग का लाभ लेना!'

इस आदेशानुसार गोपालानंद स्वामी, बड़े आत्मानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी प्रति वर्ष स्वामी का लाभ लेने जूनागढ़ आते रहते थे।

प्राणप्रतिष्ठा के अवसर पर जूनागढ़ के नवाब साहब श्रीहरि के दर्शन करने आए थे। उन्होंने श्रीहरि से विनती की, 'जब मंदिर की जमीन का

दस्तावेज हमने किया था, तब आपने मुझे वचन दिया था कि 'हम यहाँ रहेंगे ? तो आप अब यहाँ हमेशा रहना।'

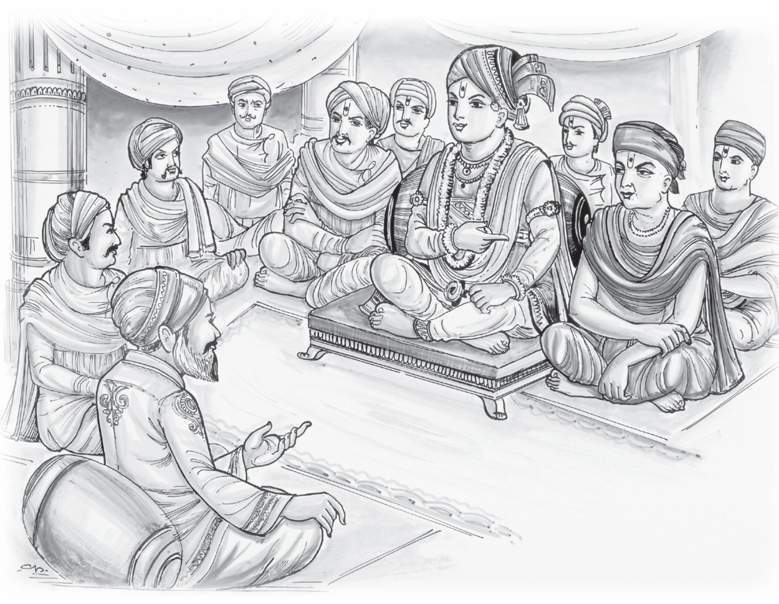
तब श्रीहरि ने पूछा, 'हम रहें या हम यहाँ हमारे जैसे महापुरुष को निरंतर रखें?'

नवाब ने कहा, 'महाराज, खुदा जैसे तो एक खुदा ही है।' तब श्रीहरि ने स्वामी की ओर अंगुलि-निर्देश करके नवाब से कहा, 'ये साधु हमारे जैसे हैं। हमारे समान ही समर्थ है! हमने इनको इस मंदिर के महंत पद पर स्थापित किए हैं, और उनको हम यहाँ रखते हैं!

नवाब ने प्रसन्नता से कहा, 'वाह महाराज, तब तो बहुत अच्छा हुआ।'

•

संवत् 1885 के जन्माष्टमी के उत्सव पर स्वामी गढ़डा पधारें। महाराज अक्षरकुटिर में विराजमान थे। स्वामी दंडवत् प्रणाम करने लगे। तब शुकमुनि श्रीहरि के पास बैठकर पत्र लिख रहे थे। स्वामी को देखते ही वे चटाई या गद्दी लेने खड़े हुए। श्रीहरि ने पूछा, तो उन्होंने बताया कि, 'जूनागढ़ के महंत पधारे हैं, उनके लिए आसन ढूँढ़ता हूँ।'



श्रीहरि हँसे और बोले 'स्वामी की महत्ता आसन और महंताई से नहीं है, उनकी महत्ता तो अनादि काल से हैं।' श्रीहरि के स्वमुख से स्वामी की ऐसी महिमा सुनकर शुकमुनि को अत्यंत आश्चर्य हुआ।

26. मैं आपमें निरंतर रहता हूँ

श्रीहरि को अपने स्वरूप के समान और धामरूप संतवर्य गुणातीतानन्द स्वामी के साथ कैसी एकता थी, वह श्रीहरि के अंतिम दिनों में सबको दृष्टिगत हो गया। महाराज ने अपनी अंतिम अवस्था में ब्रह्मानंद स्वामी को दो महीने तक अपने पास रखकर बहुत सुख दिया। जब उन्होंने स्वधाम जाने का संकल्प किया, तब ब्रह्मानंद स्वामी को बुलाकर कहा, 'आप जूनागढ़ जाईए और वहाँ से गुणातीतानंद स्वामी को यहाँ भेजिए।' ब्रह्मानंद स्वामी को कहाँ से मालूम होता कि महाराज ने स्वामी को इसलिए बुलाए थे कि श्रीहरि ने स्वामी से वचन दिया था कि मैं धाम में जाने से पहले आपको अवश्य मेरे पास बुला लूँगा।

हाँ, इस दुःखद समय में ब्रह्मानंद स्वामी को श्रीहरि से अलग होना मुनासिब भी नहीं लगता था और स्नेह के आधिक्य से उनको श्रीहरि से अलग होने का मन भी नहीं था, परंतु आज्ञा के कारण वे मजबूर थे।

ब्रह्मानंद स्वामी जूनागढ़ पहुँचे। तब स्वामी भी मानो महाराज के आदेश की प्रतीक्षा में ही थे। संदेश मिलते ही स्वामी गढ़डा की ओर चल दिए। ज्येष्ठ शुक्ला छठ को वे गढ़डा आ पहुँचे। महाराज ने गहरी बीमारी ग्रहण कर ली थी। श्रीहरि के पास जाने का कड़ा प्रतिबंध था। पर श्रीहरि का आदेश था कि स्वामी आए तब उनको तुरंत मेरे पास ले आना। स्वामी के आते ही सुराखाचर उनको श्रीहरि के पास ले गए। महाराज के दर्शन करते ही स्वामी की आँखें भर गईं। दंडवत् प्रणाम करके वे पास बैठ गए। श्रीहरि और स्वामी की एक दृष्टि हुई कि श्रीहरि बोल उठे,

मीठा व्हाला केम विसरुं मारुं तमथी बांधेल तन हो,
तरस्याने जेम पाणीडुं व्हालुं, भूख्याने भोजन हो!

(अर्थात् हे मेरे प्यारे भक्तराज, मेरी देह, मेरी आत्मा तुम से ही बंधी हुई है ! जिस प्रकार प्यासे को पानी प्यारा लगता है, आप मुझे प्यारे लगते हैं !)

स्वामी के भीतर से भी यही सूर निकलते थे। कुछेक पल के बाद श्रीहरि ने जूनागढ़ के सारे समाचार पूछे।

श्रीहरि ने स्वधाम जाने का निश्चय किया था, अतः गोपालानंद स्वामी को बुलाकर कहा था कि 'हमने आपको दोनों विभागों के (वरताल तथा अहमदाबाद) मुख्य संत नियुक्त किए हैं, पर हमारे अक्षरधाम जो गुणातीतानंद स्वामी और हमारे प्रति प्रीतिवाले रघुवीरजी, इन दोनों का आप बराबर खयाल रखना।'

स्वामी को भी श्रीहरि ने आज अनुपम आदेश दिया, 'हम अब इस लोक में रहना नहीं चाहते, आप हमारे स्वरूप की पूर्ण महिमा सबको समझाना और सभी संत्सगियों को भगवान का आनंद देना।'



इस प्रकार संवत् 1886 ज्येष्ठ शुक्ला दशवीं की मनहूस सुबह उदित हुई। आज श्रीहरि अपनी यौगिक कला से स्वतंत्ररूप से स्वधाम पधारें। सर्वत्र शोक छा़ गया। गोपालानंद स्वामी और गुणातीतानंद स्वामी ने सबको सांत्वन दिया। लक्ष्मीबाडी में महाराज का अग्निसंस्कार किया गया।

तत्पश्चात् स्वामी एक दिन बहिर्भूमि (शौचक्रिया के लिए) जा रहे थे, तब बाड़ी में पानी का छोटा सा प्रवाह चलता था उसके आस पास हरी हरी घास लहरा रही थी। उसे देखकर स्वामी का मन शोक में डूब गया कि 'इस घास का जीवन जल है, तो वह कैसी हरी है! कैसी लहरा रही हैं! हमारा जीवन महाराज थे, जो अब चले गए।' ऐसे विचार में ही स्वामी उद्विग्न होकर वहीं गिर पड़े।

अचानक महाराज दिव्यरूप में वहाँ प्रकट हुए और स्वामी को मूर्च्छा से जगाकर बोले कि 'स्वामी, मैं कहाँ गया हूँ। मैं तो आप में निरंतर रहता हूँ।' इतना कहकर श्रीहरि अदृश्य हो गए।

श्रीहरि के दर्शन से स्वामी अत्यंत आनंदित और रोमांचित थे। श्रीहरि की आज्ञा अनुसार एकांतिक धर्म के प्रवर्तन हेतु स्वामी उसी समय से कार्यरत हो गए।

27. स्वामी के सत्संगी

श्रीहरि के आदेशानुसार स्वामी ने सोरठ प्रांत में कैसे उत्तम हरिभक्त तैयार किए थे, उनके असंख्य दृष्टांत हैं:

सोरठ के हरिभक्तों को स्वामी के प्रति अनन्य प्रेम था। उनमें एक थे हामापर गाँव के करसन बांभणिया। उनको एकबार मन में चिंता हुई, क्योंकि बरसात की कमी के कारण एक साल थोडा कमज़ोर आया था, करसनभाई ने घर में जितने आभूषण थे, सब एक डिब्बे में रखे और जूनागढ़ आकर स्वामी के चरणों में समर्पित कर दिए। और बोले, 'स्वामी, यह वर्ष दुर्बल है, इसलिए संत देश में भ्रमण करने नहीं जा सकेंगे और हरिभक्त भी बिना उत्पादन कुछ दान नहीं कर पाएँगे, इसलिए मेरे इन आभूषणों को आप रखें और इसमें से साधुओं को भोजन करवाना!

उनका ऐसा भक्तिभाव देखकर स्वामी खूब प्रसन्न हुए। पर उन्होंने

करसनभाई को समझाया कि 'हमारे यहाँ तो महाराज के प्रताप से कोई कमी नहीं हैं, इसलिए आप ही इनका उपयोग करें।'

यह सुनते ही करसन बांभणिया की आँखें भर गईं। उनके मन में यही भाव उठा कि स्वामी मेरी सेवा का स्वीकार नहीं करेंगे?' उन्होंने फिर गिड़गिड़ाते हुए विनती की। भक्तराज का ऐसा प्रेम देखकर स्वामी ने उनका दान स्वीकार कर लिया, किन्तु अधिकृत व्यक्ति को सूचना दे रखी कि इसमें से एक पैसा भी कम नहीं होना चाहिए! दूसरा साल किसानों के लिए अति उत्तम साबित हुआ, स्वामी ने करसन बांभणिया को बुलवाकर खूब समझाकर वह डिब्बा आभूषण के साथ वापस लौटा दिया। इस प्रकार स्वामी भी हरिभक्तों को संभालते और ऐसे भक्त भी अपना सर्वस्व स्वामी को अर्पण किया करते थे।

जूनागढ़ में मंदिर की प्रतिष्ठा के प्रसंग पर श्रीहरि ने सभी हरिभक्तों को प्रति वर्ष जूनागढ़ आने की आज्ञा दी थी। यह आदेश निष्कुलानंद स्वामी ने भक्त चिंतामणि में इस प्रकार लिखा हैं:

वळी संतने आपी आज्ञा रे, रहेवुं नहीं अहीं आव्या विना रे।
वरसो वरस एक मास रे, करवो आ मंदिरमां निवास रे।

(अर्थात् संतों को आज्ञा दी कि यहाँ आए बिना न रहना ! साल में एक माह तो इस मंदिर में अवश्य रहना !)

गोपालानंद स्वामी श्रीहरि की आज्ञा-अनुसार प्रतिवर्ष चातुर्मास में जूनागढ़ पधारते थे। और एक मास ठहरते थे। स्वामी भी मंदिर का सारा कार्यभार उनको सौंप देते और स्वयं कथावार्ता करते रहते। उस समय हरिहर्यानंद स्वामी, उपेन्द्रानंद स्वामी, तद्रूपानंद स्वामी, सिद्धानंद स्वामी, कृष्णचरणदासजी, मुकुंदचरणदासजी, वृंदावनदासजी, बापु रतनजी, बोचासण के काशीदास, पाळियाद के भाणजीभाई, कारियाणी के नथु पटेल, ददुका के देवराजभाई, तथा जीवराज सेठ, सुरत के उमेदभाई हरगोविंद, अहमदाबाद के पीतांबर फूलचंद, वसो के वाघजीभाई, काशीराम तथा जगुभाई, उमरेठ के जीभाई शेलत तथा करसनभाई, कपड़वंज के भूधरभाई आदि स्वामी के सत्संग के लिए जूनागढ़ आते थे। सोरठ के हरिभक्तों में मयाराम भट्ट, वंथली (बनिये की) गाँव से बेचर भट्ट, वंथली के

कल्याणभाई, मांगरोल के मूलचंदभाई तथा माणेकचंद सेठ, पर्वतभाई के पुत्र मेघाभाई, गोविंदराम भट्ट, उपलेटा के लालाभाई, अरजण बाबरिया, भायावदर के भोजाभाई, उना के गणेशजी सेठ, और कल्याणजी सेठ, वल्लभजी सेठ, जेठा सेठ आदि हरिभक्त बार-बार जूनागढ़ आकर स्वामी के दर्शन-सत्संग का लाभ लेते थे।

28. 'मेरे वचन तो एक जोगी ही बदल सकते हैं'

एक दिन स्वामी ने पार्षदों को पास के डूँगर पर से हरी घास लाने को कहा। पार्षद घास लेने के लिए जाने को तैयार हुए। इतने में उनको गोपालानंद स्वामी मिले। उन्होंने पार्षदों से कहा, 'भेंसला नामक पहाड़ पर बादल छाये हुए हैं, अत: धारासार बारिश होने की संभावना हैं, आप घास लेने मत जाना।'

पार्षद अपने निवास पर लौट रहे थे, तब स्वामी ने पूछा, 'क्यों आप घास लेने नहीं गए?' पार्षदों ने कहा कि गोपालानंद स्वामी ने बारिश के कारण जाने की मना की है। तब स्वामी ने कहा, 'आप समझें, ठाकुरजी को गाय का ही दूध भाता हैं। गाय हरी घास खाए बिना दूध कैसे देंगी? आप जाओ, बारिश नहीं होगी। यदि होगी तो आपके लौट जाने के बाद ही होगी।' पार्षद तो घास लेने पहाड़ियों की ओर चल दिए। थोड़ी देर में घास लेकर वापस लौट गए।

तब गोपालानंद स्वामी ने पूछा, 'मैं ने आपको मना की थी, फिर भी घास लेने क्यों गए?' पार्षदों ने स्वामी की आज्ञा की बात बताई। यह सुनकर गोपालानंद स्वामी हँसे और सिर हिलाते बोले, 'यह तो जोगी का ही काम हैं! मेरे वचन तो वे ही बदल सकते हैं!' ऐसा कहकर सभामंडप में पधारे। इतने में स्वामी के वचनानुसार धारासार बारिश प्रारंभ हो गई!

•

जूनागढ़ में स्वामी ने बातों का अखाड़ा लगाया था। स्वामी को केवल एक ही लगन थी कि श्रीहरि के स्वरूप का सबको सर्वोपरि निश्चय कराना। अनादि ब्रह्म के संग से ही जीव ब्रह्मरूप हो सकते हैं और ब्रह्मरूप होने के बाद ही पुरुषोत्तम की भक्ति का अधिकार प्राप्त होता हैं। सबको ब्रह्मरूप करने की एक मात्र लगन से स्वामी अनवरत बातें चालू रखते। तथा

जूनागढ़ के आसपास सोरठ प्रदेश में भी स्वामी ने खूब परिभ्रमण किया और हजारों मुमुक्षुओं को सत्संग की दृढ़ता करवाई थी।

वे प्रति वर्ष चैत्री पूर्णिमा के उत्सव पर वरताल पधारते। रास्ते में हरिभक्त दो दो मील तक सामने आकर स्वामी का स्वागत करते थे। स्वामी के द्वारा सबको श्रीहरि के दर्शन-सत्संग का ही अनुभव होता था। जब स्वामी वरताल गाँव के निकट पहुँचते, तब संत-हरिभक्त महेलाव गाँव तक तकरीबन 8 कि.मी. सामने जाकर उनका सन्मान करते। समूचे सत्संग को स्वामी के प्रति इतना अपार प्रेम था।

29. गुणातीत बातें

वरताल में पूर्णिमा की उत्सव सभाओं में गोपालानंद स्वामी तथा नित्यानंद स्वामी, गुणातीतानंद स्वामी के पास ही बातें करवाते थे। जिस दिन स्वामी श्रीहरि के पुरुषोत्तमस्वरूप की बातें करते तब गोपालानंद स्वामी खूब प्रसन्न होते और कहते, 'अहो, स्वामी तो साक्षात् अक्षरब्रह्म का अवतार हैं। इसलिए उनको शास्त्र की बातें बाधा नहीं डाल सकतीं।'

और जिस दिन स्वामी धर्मामृत, निष्कामशुद्धि, शिक्षापत्री, वचनविधि, चोसठपदी आदि ग्रंथ के प्रमाण देकर त्याग-वैराग्य की बातें करते, तब कई साधुओं को त्याग का जोश इतना बढ़ जाता कि वे षट्रस का त्याग कर देते! तब नित्यानंद स्वामी प्रसन्न होकर कहते कि 'निष्कुलानंद स्वामी ने ग्रंथ रचकर पंचविषय के मूल काटे हैं, और गुणातीतानंद स्वामी ने बातें करके पंच विषय के मूल काटे हैं।'

इस प्रकार समग्र सत्संग में श्रीहरि की निष्ठा के प्रवर्तन में तथा धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति सहित एकांतिक धर्म का प्रवर्तन करने में स्वामी अनन्य थे। उनकी अप्रतिम ब्राह्मी स्थिति और महाराज के अखंड संबंध से सबको उनमें श्रीहरि के स्वरूप की झांकी होती रहती थी।

बारिश के मौसम में नित्यानंद स्वामी स्वामी का सत्संग करने के लिए जूनागढ़ पधारे थे। परंतु स्वामी हमेशा उनके पास ही सभा में बातें करवाते थे। अत: नित्यानंद स्वामी ने एक दिन स्वामी से कहा, 'हम तो आपकी बातें सुनने आते हैं, और आप तो मंदिर के काम में व्यस्त रहते हैं।'

स्वामी ने कहा कि 'मेरी बातें सबको पथ्य पड़े ऐसी नहीं हैं !'

नित्यानंद स्वामी ने कहा, 'आप तो जोगी हैं! आपकी बातें तो सुपथ्य ही हैं! और सबको रुचिकर लगती है!'

तब स्वामी ने कहा, 'हम जब पूर्वाश्रम में थे, तब खेती के लिए बैल खरीदने गए थे। एक वृद्धा के पास दो बैल थे। एक की कीमत साठ कोरी और दूसरे की कीमत तीस कोरी थी! दोनों बैल देखने में एक समान होने के बावजूद उनकी कीमत में फर्क था, इसलिए हमने वह वृद्धा से पूछा, 'दोनों बैल एक समान दिखते हैं, फिर भी इनके मूल्य में इतना बड़ा फर्क क्यों?' तो उस वृद्धा ने बताया कि 'जो ज्यादा कीमतवाला बैल है, उसको तो मैं ने मेरी आँखों के सामने उसकी माँ का दूध पिलाया है, इसलिए वह चाहे कितना ही बोज होगा उसे ढ़ो लेगा। किन्तु ढ़ोते ढ़ोते बैठ नहीं जाएगा। जब कि कम कीमतवाला जो बैल हैं, वह तो मैंने खरीद कर लिया है, इसलिए उसका भरोसा नहीं।' फिर हमने दोनों बैल खरीद लिए। तब उस वृद्धा ने माँ का दूध-पीकर चलने वाले अधिक मूल्यवाले बैल को प्रणाम करके कहा, 'मेरे खीले की लाज रखना।' इस प्रकार महाराज ने भी हम सबको सामने से उनके सिद्धांत, रुचि, रहस्य इत्यादि का दूध पिलाया है, और उन्होंने हमको रात-दिन देखे बिना बातें की हैं और अपनी महिमा समझाई है तथा दर्शन-प्रसादी का सुख दिया है। अतः हम आज्ञा-उपासना की दृढ़ता रखने में कभी भी रंचमात्र कसूर मत रहने दें। यदि आज्ञा-उपासना बराबर न समझ सकेंगे तो महाराज के इस खानदान की इज्जत धूलमें मिल सकती हैं!' इस प्रकार अद्‌भुत बातें की, जो सुनकर नित्यानंद स्वामी बहुत प्रसन्न हुए।

30. सत्संग में अक्षरब्रह्म स्वरूप का प्रवर्तन

गोपालानंद स्वामी एकबार जूनागढ़ आते समय रास्ते में गढ़डा पधारे। यहाँ सभा में उन्होंने बताया कि 'महाराज ने भिन्न-भिन्न मंदिर के महंत बनाए, परंतु सच्चा व्यवहार तो गुणातीतानंद स्वामी ने ही किया। वह इसलिए कि जूनागढ़ में नागरों के विरोध के बावजूद मंदिर का काम पूरा किया। मंदिर की आर्थिक उन्नति भी की। पूरे सोरठ देश में सत्संग फैलाया। साधुओं को धर्म-नियम का पालन करवाया। रघुवीरजी महाराज

की प्रसन्नता पाई और अखंड़ कथावार्ता करने पर भी एक पल भी श्रीहरि की मूर्ति को नहीं भूले। आज ऐसे सद्‌गुरु पूरे सत्संग में कहीं नहीं हैं। वे तो सर्वज्ञ हैं, सर्वदक्ष हैं और धन्वंतर वैद्य के समान हैं।'

बाद गोपालानंद स्वामी जूनागढ़ पधारें, श्री हरिनवमी के दूसरे दिन उपवास का पारणा करके उन्होंने सभा में सब संत-हरिभक्तों से कहा, 'आप सब स्वामी की जैसी महिमा समझनी चाहिए, ऐसी नहीं समझते। महाराज ने ही स्वमुख से उनकी महिमा मुझे कही थी कि 'गुणातीतानंद स्वामी मूल अक्षरब्रह्म हैं।' ऐसा कहकर भादरा के डोसा भक्त, रत्नाभाई तथा वशराम सुतार के पास, महाराज ने सर्व प्रथम भादरा गाँव में स्वामी की महिमा की जो बातें कही थी वही बातें सभा में कहलाई। इस प्रकार गोपालानंद स्वामी स्वामी की अपार महिमा का प्रवर्तन करते थे।

●

श्रीहरि के स्वधामगमन के बाद उनके अंतेवासी सेवक नाजा जोगिया त्यागी हुए थे, उनका नाम घनश्यामदास था। वे वरताल में स्वामी की बातें सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे। और स्वामी के साथ प्रतिवर्ष सत्संग करने के लिए जूनागढ़ आते थे। परंतु अभी तक उनको स्वामी की यथार्थ महिमा समझ में नहीं आई थी। एकबार वे सभामंडप में ध्यान करने बैठे थे। स्वामी भी पास ही बैठे थे, थोड़ी देर के बाद स्वामी ने उनसे कहा, 'आप ध्यान करते हैं कि क्या करते हैं?'

घनश्यामदास ने कहा, 'अरे, स्वामी, मुझ पर ऐसा गलत आक्षेप क्यों लगाते हैं?'

तब स्वामी हँसे और बोले, 'क्या आप ध्यान करते थे या फिर गढ़डा में सफेद दागवाली भेंस के मस्तक पर हाथ फिरा रहे थे?'

घनश्यामदास तो यह सुनते ही चौंक पड़े, वास्तव में वे ध्यान करते गढ़डा पहुँच गए थे! उन्होंने सहसा खड़े होकर स्वामी के पैर पकड़ लिए और गद्‌गदित होकर बोले, 'मेरे मन में आज तक ऐसी शंका थी कि आप खिराज देनेवाले सामान्य राजा हैं, पर आज निश्चय हुआ कि आप असल में सच्चे चक्रवर्ती हैं और आप महाराज का साक्षात् स्वरूप हैं। आप सममुच में अक्षर ही हैं।'

स्वामी मुस्कराए और उनको आशीर्वाद दिए।

स्वामी वरताल में चैत्री पूर्णिमा के उत्सव पर पधारे थे। दोनों विभागों के आचार्य भी यहाँ उपस्थित थे। उत्सव-सभा में गोपालानंद स्वामी तथा बड़े सद्‌गुरुओं ने स्वामी को हार पहनाए। स्वामी का कंठ हार से भर गया, इसे देखकर भोयका गाँव के भक्त मालजी सोनी ने अपने गुरु गोपालानंद स्वामी से पूछा, 'ये सद्‌गुरु कौन है?'

तब गोपालानंद स्वामी ने कहा, 'मैं ने तुम्हें पहले कहा था कि मैं तुम्हे अक्षरधाम बताऊँगा, तो वे गुणातीतानंद स्वामी साक्षात् अक्षरधाम के अवतार हैं। अत: अब उनकी पहचान दृढ़ करके रखना।'

यह सुनकर मालजी सोनी ने स्वामी के स्वरूप का दृढ़ निश्चय किया। (भक्तराज मालजी सोनी को ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज-स्वामी यज्ञपुरुषदासजी से भेंट हुई थी, और सोनी के मुख से ही स्वामीजी ने उपर्युक्त बात सुनी थी। इसके बाद शास्त्रीजी महाराज कई मुमुक्षुओं को मालजी सोनी के पास भोयका ले जाते और यह बात सुनाकर स्वामी के स्वरूप की दृढ़ता करवाते थे।)

31. खारे जीव को मीठा किया

गोंडल (जिला राजकोट) के पास लीलाखा गाँव है। इस गाँव में मुंजा सुरु नामक एक खूँखार आदमी रहता था। शराब पीना, मांसाहार करना और डकैती डालना उसका नित्यक्रम बन गया था। किसी भी जीव की हत्या करना उसके लिए बाएँ हाथ का खेल था। वैसे तो वह मेंगणी के दरबार मानसिंह की कचहरी में सभासद था। किन्तु उसकी ऐसी अमानुषी प्रवृत्ति से सब डरते रहते थे। हाँ, पहाड़ो की कठिन चट्टानों के पीछे जैसे झरनों की निर्मलता छिपी हुई होती है, उसी प्रकार मुंजा के भीतर मुमुक्षुता छिपी हुई होगी।

एकबार स्वामी उनके गाँव पधारे और उनको बुलावा भेजा। वह स्वामी के दर्शन करने तो आया, परंतु स्वामी की आँख से आँख नहीं मिला पाया। स्वामी ने उनको उपदेश देते हुए कहा, 'मुंजा, क्या तुम जानते हो कि, अफ़ीम एक कल्प तक, भांग तीन सौ कल्प तक और शराब तथा मांस एक हज़ार कल्प तक उसके सेवन करनेवाले को नरक में डालता है। यदि ब्रह्मा भी

सुरापान करें तो वे भी अशुद्ध हो जाते हैं, तो अन्य किसीकी तो बात ही क्या?!' इस प्रकार शराब-मांसादि के निषेध की कई बातें की।

सुनकर मुंजा सुरु ने कहा, 'स्वामी! हमारा क्षत्रिय का धर्म है कि शिकार करना, मांस खाना और शराब पीना। आपकी ऐसी डरावनी बातें तो बनिया और ब्राह्मण के लिए होगी! हम तो शास्त्रों को ऊँचे लटका रखते हैं, समझे?' मुंजा सुरु ने ऐसा कहते ही घमंड से स्वामी की ओर देखा तुरंत ही स्वामी ने उसको समाधि लगा दी!

समाधि में यम के दूत उसको यमपुरी में ले गए। और अत्यंत त्रासदायक यातना का अनुभव कराया। मुंजा की देह पीडा से तड़पने लगी। जब स्वामी ने उसको समाधि से जगाया, मुंजा सुरु उठकर सीधा स्वामी के चरणो में गिर पड़ा। पछतावा उसकी आँखो से आँसू बनकर बहने लगा। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'स्वामी, यमपुरी का दुःख सचमुच कोई कल्पना नहीं, वास्तव है! मेरे पर दया करो कि मुझे कभी यमपुरी में न जाना पड़े।'

स्वामी ने हँसकर कहा, 'यदि पंचव्रत घारण करके श्रीहरि का आश्रय करें, तब वह दुःख मिटेगा।' उसने तुरंत स्वामी के पास पंचव्रत धारण करके कंठी धारण की। उसी क्षण से पाप का पर्वत मुंजा सुरु सत्संगी बन गया। मुंजा के सत्संगी होने से आसपास के अनेक गाँवों के चरवाहे बहुत खुश हुए। क्योंकि मुंजा प्रतिदिन उनकी भेड़-बकरियाँ उठा ले जाता था। स्वामी एकबार गाँव की रहावन पर घास आदि जलाकर तापते हुए बातें करते थे, तब एक चरवाहा वहाँ आकर बैठा और पूछने लगा, 'क्या मुंजा सुरु के गुरु आप हैं?'

स्वामी ने हँसकर 'हाँ' कही कि चरवाहा ने उसी क्षण स्वामी के पैर पकड़ लिए और बोलने लगा, 'आपने तो मुझे निहाल कर दिया। मुंजा सुरु जब भी हमारी भेड़-बकरियों की टोलियों में आता तब कई भेड़-बकरियों को उठा ले जाता था। परंतु जब से आपने उसको सत्संगी बनाया है, तब से उसकी ओर से परेशानी मिट गई है। सचमुच, आप असली साधु हैं। आज से में भी आपको गुरु स्वीकार करता हूँ !'

स्वामी ने उसको भी पंचव्रत देकर कंठी धारण करवाई। वह 'स्वामिनारायण' 'स्वामिनारायण' नहीं बोल सकता था, परंतु वह 'गुणानंद' उच्चार करता हुआ प्रतिदिन माला घुमाता था और स्वामी का स्मरण करता

रहता था।

●

बाबरियावाड में (अमरेली जिले में) माणसा नामक गाँव है। यहाँ वालेरा वरु और सीदी वरु दोनों सौतेले भाई रहते थे। वालेरा की जायदाद का ज्यादातर भाग दबाकर सीदी उसके साथ अन्याय करता था, और कम ज़मीन से उसको खेती में भी कम उत्पादन मिलता था। आखिर वह बागी बनकर निकल पड़ा। गाँव गाँव धावा बुलाने लगा। इसके जुल्म ने पूरे प्रदेश में हाहाकार मचा रखा था।

स्वामी फिरते फिरते गिर के जंगल से निकले। अचानक शस्त्रधारी आदमियों ने संघ को घेर लिया। संत तथा हरिभक्त तो डर गए। परंतु स्वामी निर्भीक होकर सबको ढाढस बँधाने लगे। लुटेरों ने सबको अपने अड्डे पर ले जाना चाहा। स्वामी और संघ थोड़ा ही चलने के बाद वहाँ पहुँचे, जहाँ वालेरा वरु बैठा था! स्वामी की सौम्य मुखमुद्रा, अमृत सभर वाणी और करुणार्द्र नेत्र की क्या जादुगरी हुई, कि वालेरा स्वामी को देखते ही झट से खड़ा हो गया, और स्वामी के चरणों में गिर पड़ा। स्वामी ने उनको अत्यंत धैर्य दिया और समझाया, 'निर्दोषों की हिंसा करना हमारे लिए क्या उचित हैं? आज से सात दिन के बाद तेरी संपत्ति तुझे जरूर मिल जाएगी।' लेकिन आश्चर्य तो यह था कि वह गिनती करना ही नहीं जानता था !' स्वामी ने एक रस्सी के टुकड़े पर सात गाँठ लगाकर उसको दे दी और कहा कि 'इसमें से रोजाना सुबह एक गाँठ खोलते रहना। अंतिम गाँठ जिस दिन खुलेगी उस दिन तेरी विपत्ति का अंत आ जाएगा!' वालेरा ने सबको दूधपाक की रसोई दी। ठाकुरजी को भोग चढ़ाया। भोजन करके वालेरा को स्वामी और संतों ने आशीर्वाद दिया और स्वामी ने वहाँ से विदा ली। ठीक सातवें दिन सीदी वरु के मन में प्रेरणा हुई और वालेरा की संपत्ति उसने वालेरा को लौटा दी !

स्वामी के आशीर्वाद से वालेरा की ज़मीन में पानी भी बहुत हुआ। फ़सल भी अच्छी हुई। उनको स्वामी का दृढ़ आश्रय हुआ। इसलिए अपनी उत्पन्न का दसवां हिस्सा जूनागढ़ आकर उसने मंदिर में स्वामी के चरणों में अर्पण किया। उनकी जाति के दूसरे लोग तुलसीश्याम के एक धर्मस्थान

में आस्था रखते थे और वहाँ पर अनाज का दान करते थे। उन्होनें वालेरा को भी वहीं दान देने का आग्रह किया, किन्तु वालेरा ने सबको साफ़-साफ़ सुना दिया कि मुझे तो प्रकट स्वामिनारायण भगवान का ही एक दृढ़ और अनन्य आश्रय है, यदि आप मुझे जाति से, सगे-संबन्धी से अलग करेंगे, तो उसका मुझे कोई डर नहीं हैं, लेकिन अब तो मेरी आस्था मेरे गुरु के चरणों से ड़िगनेवाली नहीं है!' इस प्रकार वालेरा वरु ने शूरवीर होकर, जाति से विमुख होने का डर छोड़कर सत्संग की दृढ़ता रखी।

●

श्रीहरि की आज्ञा से गोपालानंद स्वामी भी सत्संग में श्रीहरि के पुरुषोत्तम स्वरूप की बातें करते थे, परंतु वह कई लोगों को पसंद नहीं था। अतः गोपालानंन्दस्वामी ने उदास होकर घाम में पधारने का निश्चय किया, तब बोटाद के शिवलाल सेठ ने दिलगीर होकर पूछा, 'स्वामी, अब हमारा आधार कौन?'

गोपालानंद स्वामी ने कहा, 'आपको किसका आधार चाहिए? यदि आपको व्यवहार सीखना हो तो सुंदरीयाणा गाँव के पूँजा सेठ के पास जाना, और व्यवहार और मोक्ष दोनों सीखना हो तो जूनागढ़ में गुणातीतानंद स्वामी के पास जाना। स्वामी जैसे समर्थ साधु आज कोई नहीं हैं। वे तो मूल अक्षरधाम हैं, अतः आप तथा प्रागजी भगत और जागाभगत तीनों जूनागढ़ जाना!'

इस प्रकार बड़ौदा के हरिभक्त प्रेमानंद रायजी तथा बापु रायजी ने गोपालानंद स्वामी को बड़ौदा की ओर दृष्टि रखने को कहा, तब भी गोपालानंद स्वामी ने बताया कि 'इस समय तो श्रीहरि की ओर दृष्टि होनी चाहिए या जूनागढ़ के जोगी मूल अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी की ओर दृष्टि होनी चााहिए।'

गोपालानंद स्वामी का ऐसा उपदेश सुनकर उनके सभी शिष्य स्वामी का समागम करने के लिए जूनागढ़ आते थे।

32. प्रौढ़ प्रताप

संवत् 1911 में रघुवीरजी महाराज ने वरताल में चातुर्मास निमित्त कथाप्रसंग का आयोजन किया था। देश-प्रदेश से संत-हरिभक्तों के मंडल

आए थे। स्वामी को भी निमंत्रण दिया गया था। साढ़े चार माह तक स्वामी ने महाराज के पुरुषोत्तमपना की एवं विषयखंडन की अद्भुत बातें की थी। कई लोगों को ऐसी बातें पसंद नहीं पड़ती थीं। इसलिए कुछ समय के लिए शुकस्वामी को सभा में बात करने बिठाये। परंतु शुकस्वामी की आवाज मंद थी और वे शास्त्रों की गहन बातें करते रहते थे। जिससे कथा में एकाग्रता भी नहीं रहती थी। अत: श्रीहरि ने रघुवीरजी महाराज को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, 'स्वामी को यहाँ क्यों रखें हैं? यदि उनकी बातें सुननी हो तो उनको वरताल रखें, वरना उनको जूनागढ़ जाने दीजिए।'

अत: दूसरे दिन सभा में रघुवीरजी महाराज ने आदेश दिया कि अब तो सभा में स्वामी ही बातें करेंगे, जिनको पसंद न हो वे गाँव-गाँव सत्संग कराने निकाल जाएँ।

शुकस्वामी ने भी स्वामी से क्षमा माँगते हुए कहा कि 'मैं तो दूसरों के कहने से कथा करने बैठा था।'

इस प्रसंग पर स्वामी की एकांतिक धर्म की तथा श्रीहरि की सर्वोपरि निष्ठा की चोटदार बातों से सत्संग में बहुत प्रभाव पड़ा। और मुमुक्षुओं को महाराज तथा स्वामी का यथार्थ स्वरूप समझ में आया। इस प्रसंग के बाद स्वामी अक्षरब्रह्म का अवतार है, उस बात का प्रचलन सत्संग में ज़ोरों से होने लगा।

आखिरी दिनों में स्वामी महाराजश्री के निवास पर भी बातें करने जाते थे। एकबार स्वामी ने गढ़डा मध्य प्रकरण का नौंवा वचनामृत पढ़ा और कहा, 'इस वचनामृत में बताया है कि यदि महाराज को दूसरे अवतार जैसे समझें अर्थात् राम-कृष्ण जैसे समझें तो महाराज का द्रोह करने के बराबर हैं। परंतु यह दृढ़ता अपने आप तो कहाँ से हो सकती है? कोई बड़े संत से यह बात समझी जाए तो ही समझ में आ सकती है कि महाराज सर्वोपरि है, सर्व अवतार के अवतारी है। ये तो पुरुषोत्तम नारायण का टीका है, इसकी बराबरी कौन कर सके? इसलिए एक महाराज की मूर्ति के बिना बाक़ी सब हृदय में से निकाल देना चाहिए।'

यह सुनकर शुकमुनि बोले, 'यह वचनामृत तो श्रीहरि ने मुझे ध्यान में रखकर ही कहा था, पर वह यथार्थ तो मुझे आज ही समझ में आया!

इस निवास की सीढ़ी चढ़ा नहीं था, तब तक यह रहस्य समझ में नहीं आया था।'

यह बात सुनकर रघुवीरजी महाराज हँसने लगे। इसी प्रसंग पर उन्होंने स्वामी की इच्छा से अचिंत्यानंद ब्रह्मचारी को श्रीहरि के सर्वोपरि स्वरूप संबंधी और लीला सबंधी भक्तिशास्त्र की रचना करने की आज्ञा दी। तब स्वामी के आशीर्वाद से ब्रह्मचारी ने 'हरिलीलाकल्पतरु' नामक अद्‌भुत ग्रंथ की संस्कृत भाषा में रचना की।

●

जूनागढ़ में वसंतोत्सव करके स्वामी सोरठ प्रदेश में भ्रमण करने निकले और गाँव मालिया पधारे। आसपास के हरिभक्तों का बड़ा संघ उनके साथ था। स्वामी रास्ते में चलते चलते भी बातें करते रहते थे। स्वामी गाँव के चौराहे पर आए। वहाँ रामा हाटी नामक एक क्रूर आदमी को देखकर स्वामी ने पूछ लिया, 'रामा, क्या सिंह कभी साटे-जलेबी खाऐगा?'

रामा ने कहा, 'नहीं महाराज, वह तो हिंसक जानवर है, वह आदमी का खाना कैसे खाएँ? वह तो अपना ही खाना (मांसाहार) खाता है।'

तब स्वामी बोले, 'तो फिर आदमी हिंसक जानवर का खाना खाए वह क्या उचित है? और नहीं पीने का पीए, उसे क्या 'आदमी' कहेंगे?'

रामा हाटी सभी दुर्गुणों से भरपूर था, परंतु स्वामी की ये अद्‌भुत तर्कयुक्त दलीलें उसके हृदय में ऊतर गई। स्वामी की दृष्टि से उसके हृदय में प्रकाश हुआ। उसने तुरंत ही हाथ जोड़कर कहा, 'स्वामी! मैं आज से सब कुछ छोड़ देता हूँ।' ऐसा कहकर उसने तुरंत प्रतिज्ञा ली और उसी समय उसने स्वामी से पंचव्रत धारण किए और सारे दुर्गुण छोड़ दिए।

इसके बाद स्वामी चैत्रीपूर्णिमा के उत्सव पर वरताल पधारे। पिछले साढ़े चार माह तक हरिभक्तों ने जो लाभ लिया था, वह आज तक नहीं भूले थे। अतः इस समय भी हजारों भक्त स्वामी का लाभ लेने उमड़ पड़े थे। स्वामी ने सबको कथावार्ता का खूब सुख दिया।

उत्सव के बाद स्वामी जूनागढ़ जाने के लिए विदा ले रहे थे। तब रघुवीरजी महाराज ने स्वामी को अपने सीगराम में (बैलगाडी) में बैठने का आग्रह किया। स्वामी उनको प्रसन्न करने के लिए उनकी गाड़ी में बैठे।

उन्होंने अपने पास डिब्बा था, उसमें से एक पेड़ा लेकर स्वामी को दिया। स्वामी वह पेड़ा हाथ मैं लेकर एकदम बोल उठे, 'पांचसौ परमहंस मेरा गला पकड़कर कह रहे हैं कि 'मत खाना, मत खाना! यह तो ज़हर है, ज़हर है!' तब रघुवीरजी महाराज स्तब्ध रह गए और बोले, 'स्वामी, आप इतना दृढ़ वर्ताव रखते हैं, किन्तु हमारा क्या होगा? हमारी वासना की ग्रंथि तो अब तक नहीं पीधली है।'

तब स्वामी ने उनसे कहा, 'आप भगवत्प्रसादजी को अपनी गद्दी सुपुर्द करके तीर्थवासी बनकर जूनागढ़ आईए, में आपकी तमाम ग्रंथियाँ मिटाकर आपको गुणातीत न करूँ तो मेरा नाम गुणातीत नहीं।' ऐसा कहकर स्वामी ने उनको वचन दिया।

जो सुनकर रघुवीरजी महाराज ने कहा, 'भले, स्वामी, मैं भी यदि तीर्थवासी बनकर नहीं आया तो मैं रघुवीरजी नहीं।'

33. निर्मानिता

वरताल में संवत् 1913 की कार्तिकी पूर्णिमा का उत्सव करके स्वामी खंभात के कोठारी अंबावीदास और हरिभक्तों के आग्रह से संत-हरिभक्तों के संघ के साथ खंभात पधारे। नगर के नवाब साहब की चांदी की पालकी लेकर अनेक भक्त स्वामी के स्वागत के लिए आए थे। सभी ने स्वामी को इस चांदी की पालकी में बैठने की खूब प्रार्थना की। परंतु स्वामी ने स्पष्ट मना कर दी। आखिर हरिभक्तों ने कहा, 'स्वामी, यदि आप इसमें नहीं बैठेंगे, तो नवाब को हिन्दूओं पर जो द्वेष है, उसमें वृद्धि होगी और आप जैसे संत के प्रति दुर्भाव होगा।'

स्वामी ने कहा, 'मेरा अवगुण ग्रहण करना उसके हाथ में थोड़ी है? हम इस में नहीं बैठेंगे।' फिर स्वामी सामान्य सिगराम में (बैलगाड़ी में) बिराजमान हुए। नगर जन स्वामी के दर्शन करते कहने लगे कि 'वाह, बड़े जोगी दिखते हैं, परंतु फटी हुई गुदड़ी उनको शोभा नहीं देती।'

यह सुनकर स्वामी ने मंद मंद स्मित किया और समीप में चलनेवाले हरिजनों से कहा, 'यह तो फटे हुए चिथड़ों में लपेटा हुआ रत्न हैं !'

स्वामी पालकी में नहीं बैठे, यह समाचार नवाब के पास पहुँचा, तो नवाब

ने पूछा, 'ऐसे तो वे कौन है, और कहाँ के हैं, जिसने चांदी की पालकी के सम्मान को भी ठेल दिया? और मात्र सादी बैलगाड़ी में ही बैठे!!'

किसी ने कहा, 'नामदार, वे तो जूनागढ़ के गिरनारी सिद्ध हैं और बड़े ओलिया पुरुष है।'

यह सुनकर नवाब साहब की जिज्ञासा जाग उठी। वे स्वामी के दर्शन करने आए। स्वामी ने नवाब के पास कुरान की बातें की। वे खूब प्रसन्न हुए और स्वामी के चरणों में पड़ गए। उन्होंने संतों को सुतरफेनी (एक प्रकार की मिठाई) का भोजन करवाया और स्वामी की खूब सेवा की।

•

धोलेरा के मंदिर के महंत वासुदेवचरण स्वामी को कुछ व्यावहारिक कारण से मन उदास रहता था। स्वामी जब धोलेरा पधारे, तब स्वामी के दर्शन मात्र से उनको शांति हो गई। उन्होंने स्वामी से तमाम समस्या निष्कपट होकर बता दी। स्वामी ने कहा, 'यदि आपको शांति चाहिए तो हमारे साथ जूनागढ़ चलें।'

वे स्वामी के साथ चले। रास्ते में बोटाद गाँव में स्वामी ने उनको ठाकुरजी को नैवेद्य किए गन्ने के टुकड़े दिए। प्रसाद लेते ही उनको आधी शांति हो गई। फिर वे स्वामी के साथ गढ़डा और उना प्रदेश में विचरण करते हुए जूनागढ़ आए। यहाँ से उनके साथ आया हुआ संतमंडल पंचतीर्थी करने गया और स्वामी ने उनको चंपा का पुष्प देकर कहा कि 'यह फूल की सुंगध लें, इसमें तीर्थ मात्र आ गए।'

स्वामी की आज्ञा से उन्होंने केवल उस फूल की सुगंधी ली, उसी क्षण उनको अलौकिक शांति की अनुभूति हुई। फिर तो स्वामी के प्रत्यक्ष दर्शन-सत्संग से ही उनके अंतर में अखंड शांति की अनुभूति रहने लगी। अपने मंडल के संत पंचतीर्थी करके वापस लौटे, तब स्वामी की आज्ञा मिलते ही वे प्रसन्नता पूर्वक धोलेरा पधारे।

इस प्रकार स्वामी के प्रसंग में आनेवाले मुमुक्षु को स्वामी के स्वरूप की यथार्थ महिमा समझ में आती और उनको शाश्वत शांति का अनुभव भी हो जाता।

•

34. स्वामी उपशम स्थिति में

एक दिन सभामंडप में महापूजा हो रही थी। स्वामी भी सभा में बैठे थे। अचानक ही स्वामी को उपशम स्थिति (ध्यान) लग गई। वे न तो किसीके साथ बोलते, न किसीकी ओर देखते! यदि स्वेच्छा से कभी बोलते तो ऐसा बोलते कि, 'हे राजा रहुगण, तू अकोविद हो !'

स्वामी की इस स्थिति का समाचार चारों ओर पहुँच गया। फलतः गाँवो में भ्रमण करते संत-मंडल एवं हरिभक्त सब जूनागढ़ आने लगे। मंदिर में एकत्र होकर सभी हरिभक्त स्वामी के सामने अपलक नेत्र से देख रहे थे।

बराबर चार दिन के बाद ठाकुरजी के उत्थान के समय स्वामी स्वेच्छा पूर्वक जागे, और सभा में अपने आसन पर पधारे। पूरा संत-भक्तों का समुदाय स्वामी के आसपास बैठ गया। फिर स्वामी सभा पर सर्वग्राही दृष्टि डालकर बोले, 'जिस प्रकार अभी आप सब के मन मेरे प्रति स्थिर हो गया है वैसा ही सदैव लगा रहे, तो आपको कुछ करना बाक़ी नहीं रहता। क्योंकि सबको मन में ऐसा था कि शायद स्वामी शरीर छोड़ देंगे।'

उन्होंने फिर दृष्टांत देते हुए कहा कि 'एक जगह व्यापारी अच्छे वस्त्र बनाता था और दूसरे गाँव बेचने के लिए भेजता था। एक दिन नए देश में माल बेचने का विचार करके वह कपड़े की गठरियाँ लेकर चल पड़ा। परंतु इस देश में कपड़े पहनने की परंपरा ही नहीं थी! इसलिए किसीने कपड़े खरीदे ही नहीं। व्यापारी ने आधी कीमत में वह माल बेचना चाहा, फिर भी किसीने नहीं लिया। फिर तो वह व्यापारी वैसे ही गठरियाँ बिना बेचे वापस लौट आया। एक दूसरा व्यापारी बुद्धिशाली था उसको विचार आया कि हम उन सबको पहले कपड़े पहनना सीखाएँ, फिर वे अपने आप कपड़े खरीदेंगे। उसने सबको मुफ़्त में ही कपड़े बांटे। लोगों ने कपड़े लिए और पहनने लगे, पहनना सीखे, तब से कपड़ा खरीदने भी लगे! व्यापारी मालामाल हो गया! ठीक उसी प्रकार दूसरे सभी संत अक्षरधाम से महाराज के स्वरूप के ज्ञान की गठरियाँ लेकर आए थे, परंतु योग्य-अयोग्य पात्र के विचार में रह गए और वे ज्ञान की गठरियाँ वैसे की वैसे अक्षरधाम में वापस ले गए और हम तो ऐसा सर्वोपरि पुरुषोत्तम

स्वरूप का ज्ञान और अक्षर के स्वरूप का ज्ञान योग्य-अयोग्य पात्र देखे बिना सबको कहने ही लगे हैं। किसी को समझ में आए या न आए, लेकिन उसको यह तो स्पष्ट हो ही जाएगा कि स्वामी ने ऐसे ज्ञान का प्रवर्तन किया था।' ऐसा कहकर रुके।

थोड़ी देर के बाद फिर बोले, 'आज आप सब अपनी तमाम वृत्तिओं का निरोध करके मेरे सामने देख रहे हैं, इसी प्रकार यदि सदैव एकाग्र वृत्ति रहे तो आपकी संशयग्रंथि, कर्मग्रंथि, ममत्वग्रंथि, इच्छाग्रंथि, हृदयग्रंथि, अहंग्रंथि आदि पिघल जाती और सर्व वासना का नाश हो जाता।' ऐसी कई महत्त्व की बातें स्वामी ने सबको बताई। फिर ठाकुरजी के दर्शन करके भोजन करने पधारे। संत-हरिभक्तो ने भी चार दिन के उपवास के बाद आज भोजन किया।

35. भक्त वत्सल

स्वामी जूनागढ़ में बिराजमान थे। देशांतर के हरिभक्त स्वामी के दर्शनार्थ आते थे। उनमें आखा गाँव के मूलजी श्रोत्रिय स्वामी के दर्शन करने आए। स्वामी ने अंतर्यामी रूप से उनके हाल पूछे। उन्होंने अपने पुत्र वालजी के लग्न संबंधी बात स्वामी को पूछी। स्वामी ने कहा, 'पुत्र की शादी एक वर्ष के बाद करना। मूलजी की भी यही इच्छा थी, परंतु ससुर पक्ष की ओर से अत्यंत आग्रह होने से आखिर वालजी के विवाह निर्धारित कर दिए गए।

मूलजी ने जूनागढ़ आकर स्वामी से पूरी हक़ीकत बता दी। तब स्वामी अत्यंत नाराज हुए, किन्तु मूलजी से कहा, 'आप अपने खेत में जहाँ गन्ने का रस निकाल रहा हो, वहाँ वालजी को फरकने भी नहीं देना!'

मूलजी ने घर आकर वालजी को गन्ने के खेत में जाने की मना कर दी। जहाँ रस का कोल्हू चलता था, वहाँ एक दिन वालजी अपने मित्रों के साथ गन्ने के खेत में पहुँच गया। उसके पिता कुछ काम से बाहर गए हुए थे। वालजी तो कोल्हू के पास जाकर उसमें गन्ने के टुकड़े डालने लगा। और अचानक उसका हाथ कोल्हू के दो पहियों के बीच फँस गया! वालजी उसी क्षण बेहोश हो गया। उसको घर तो लाया गया परंतु घर आते ही वालजी ने दम तोड़ दिया। स्वामी तो भूत, भविष्य और वर्तमान काल से ज्ञात थे। भक्त की रक्षा के लिए उन्होंने स्पष्ट वचन कहे थे, किन्तु

वचन-पालन में शिथिलता ही दुःख का कारण बनती है! वचन की अवहेलना करने का नतीजा क्या आया, वह सबने देख लिया।

•

स्वामी विचरण करते हुए थाणागालोल गाँव पधारे। गाँव की रहावन पर खड़े रहकर, स्वामी ने गाँव से जसा भगत को बुलवाया। जसा भगत आए, तथा स्वामी को दंडवत् प्रणाम करके दिलगीरी पूर्वक कहा, 'स्वामी, गोपालानंद स्वामी ने मुझे यह गाँव छोड़ने की मना की थी। क्योंकि यह गाँव धोरी मार्ग पर आया हुआ है! इसलिए तीर्थों में आते जाते संतों की सेवा हो सकती है, पर फिलहाल मेरी व्यावहारिक हालत बहुत कमज़ोर हो गयी है।'

स्वामी ने कहा, 'आप उत्सव पर आते नहीं हैं, दान-धर्मादा निकालते नहीं हैं, इसलिए यह दुःख आया है।' फिर स्वामी ने उनको कहा कि अपने घर से कुछ अनाज के दाने तथा वस्त्र लेकर आईए!'

स्वामी की आज्ञा से जसा भगत घर से अन्न, वस्त्र, गुड़, घी आदि लेकर आ गए। स्वामी ने कपड़े का उपयोग पानी छानने के लिए किया और उस सामग्री से संतों के लिए दाल और सोगरा बनाया और स्वामी ने बरगदके पेड़ के नीचे बैठकर भोजन किया। फिर स्वामी ने जसा भगत के खेत की धरती पावन की और बोले कि 'ये तो सोना है! अब ठाकुरजी की सेवा में वार्षिक आय का बीसवां भाग दान-धर्मादा के लिए निकालना। महाराज की आज्ञा का दृढ़ पालन करना, और उत्सव पर आते रहना।'

इतना कहकर स्वामी वहाँ से आगे चले। इस प्रकार स्वामी हरिभक्तों के व्यवहार का ध्यान रखते थे। और उनको धर्म-नियम की दृढ़ता कराते रहते। यदि विपरीत देशकाल के कारण हरिभक्त सत्संग से मुँह मोड़ने लगते, तब स्वामी उन्हें अवश्य सम्भाल लेते।

•

36. बाजारु काँटे

अत्यंत सामान्य घटनाओं में से जीवन-मर्मको छू जाने वाले मार्मिक बोध को उजागर करना यह स्वामी की अनोखी विशेषता थी।

एकबार स्वामी बाडी में पधारे थे। वसो के धनिक सत्संगी

वाघजीभाई, सारंगपुर के जेठा खाचर, लोधिका के ठाकुर अभेसिंहजी आदि हरिभक्त स्वामी के दर्शन को पधारे, और स्वामी को बाडी की खुली धरती पर ही भूमिष्ठ प्रणाम करने लगे। तब किसीने उनसे कहा कि 'रहने दो, आपको काँटे लगेंगे।'

स्वामी ने तुरन्त कहा, 'ये काँटे यदि लगेंगे तो वह तो सूई से भी निकाले जाएँगे, परंतु वे बाजारु काँटे बहुत बुरे हैं, यदि वे काँटे लग जाय तो उसे निकालना बहुत मुश्किल है।'

तब एक हरिभक्त ने पूछा, 'स्वामी, बाजार तो स्वच्छ रहता है, वहाँ काँटे कैसे हो सकते है?'

यह सुनकर स्वामी ने हँसते हुए कहा, 'बाजार के काँटें में आप क्या समझेंगे? बाजार में तो रूप का काँटा आँख में, गानतान का काँटा कान में, पापी जीव के स्पर्श का काँटा त्वचा में, पापी जीव की गंध का काँटा नासिका में, स्वाद का काँटा जीभ में, संकल्प-विकल्प का काँटा मन में, नाना प्रकार के विषयों के कई काँटे चित्त में तथा विषयी पदार्थों को भोगने के निश्चयरूप काँटा बुद्धि में, इस प्रकार के कई काँटे हैं, उसे निकाले बिना नहीं निकलेंगे और यों ही मन में खटकते ही रहेंगे। उनमें भी यदि कोई ज़हरीला काँटा हो तो उससे आदमी भी मर जाता हैं। इसलिए ऐसे काँटों से संभलकर रहना चाहिए। ऐसी स्वामिनारायण ने नयी रीत चलाई है और नियम एवं यह साधु वे ठेठ अक्षरधाम से लाए है। वरना ऐसा वर्ताव रखना असंभव हैं।

सुरपुर नरपुर नागपुर, ये तीन में सुख नाहीं,
कां सुख हरि के चरन में, कां संतन के मांही।

इसलिए नियम में रहकर जो पक्के भगवदी हो, उनका निरंतर संग रखेंगे, तो इस लोक के काँटे से बचेंगे और निर्विघ्नरूप से पार उतर जाएँगे।'

ऐसी अद्‌भुत बातों का सब पर बहुत प्रभाव पड़ा। फिर संध्या आरती का समय हुआ और स्वामी मंदिर में पधारे।

37. रंक से राय

सर्दी का मौसम था। शाम के समय स्वामी श्रीहरि के प्रसादीभूत 'नारायण धरा' (एक झरना) पर संत-हरिभक्तों के साथ स्नान करने पधारे

थे। स्नान करके स्वामी ने इस स्थान के अपार महिमा की बातें कहीं। रात का समय हो चूका था। सर्दी तेज़ होने लगी। स्वामी ने तापने की इच्छा व्यक्त की। थोड़ी दूरी पर रास्ते में एक मुसलमान लकड़हारा और उसकी माँ लकड़े की गठरियाँ बांधकर बैठे थे।

भक्तों ने वहाँ जाकर पूछा, ‘हमारे गुरुजी वृद्ध संत है, उनको सर्दी अधिक लग गई है, तो क्या आप हमको थोड़ी लकडियाँ देंगे? लकड़हारे ने अपनी माँ की और देखा। उसने कहा, ‘बेटा, ओलिया संत हैं तो तेरी पूरी गठरी दे दे। मेरी गठरी में से भी दो–तीन लकड़ी दे, ताकि मेरा भी भला हो!’ ऐसा कहकर वह स्त्री ने लकड़ियाँ दे दी। भक्तों से वृद्धा के प्रेमभाव की बात सुनी तो स्वामी प्रसन्न हो गए और बोले, ‘अब से उनको लकड़ी नहीं काटनी पड़ेगी।’ फिर थोड़ी देर ताप कर स्वामी सबके साथ मंदिर पधारें।

उस लकड़हारे का नाम था बहाउद्दीन। जो अपनी माँ के साथ शहर में लकड़ी की गठरी बेचकर घर गया। उसी रात वह अपनी बहिन के साथ बाजार में कुछ काम से गया। उसी समय नवाब साहब की सवारी निकली। बहाऊदीन की बहिन का रूप देखकर नवाब ने उनके साथ शादी करने की सोच ली। उसने दोनों को अपने भुवन में बुलवाया, और उनके पास अपनी इच्छा व्यक्त की। दूसरे दिन माँ की सहमति लेकर उसने अपनी बहिन की शादी नवाब से करवाई।

तत्पश्चात् बहाऊद्दीन घीरे घीरे नवाब का विश्वासपात्र अधिकारी बन गए और आखिर वह दीवानपद पर भी नियुक्त हुए। परंतु वे इस बात का अवश्य ध्यान रखते थे कि मेरी जो प्रगति हुई है, वह सब स्वामी की कृपा से है, और उसी कारण वे हमेशा स्वामी के दर्शन के लिए आते थे, मंदिर में रसोई की सेवा देते और संतो की सेवा भी करते। इस प्रकार स्वामी की दृष्टि से बहाउद्दीन रंक से राजा बन गए!

38. नागर भाविक का परिवर्तन

स्वामी का प्रभाव ऐसा था कि उनके संबंध में आनेवाले मुमुक्षु को पंचविषय के बंधन सहज में टूट जाते थे। जूनागढ़ में एक नागर भक्त रहता था। उसको रसास्वाद में खूब आसक्ति थी। भोजन करते समय यदि स्वाद

में गड़बड़ हो गई, तो वह थाली को फैंकता और झघड़ा भी मोल लेता ! इस से उनके घर के स्वजन बहुत तंग आ गए थे। अतः उन्होंने स्वामी के पास शिकायत भेजी। इस नागर भाविक को रोज मंदिर आने का नियम था। परंतु वह कथा में नहीं बैठता था! एक दिन स्वामी ने उसको सभा में बुलाया! स्वामी की क्या कृपा कि गुणातीत संत की दृष्टि एक सामान्य जीव पर पड़ गई, उसके अंतरद्वार खूल गए। स्वामी की बातों से उसको विषय के प्रति आसक्ति मिटने लगी।

कथा के बाद भोजन का समय हुआ। स्वामी भोजनालय में भाजन करने पधारे। इस नागर भक्त के मन में भाव उठा कि स्वामी तो इतने बड़े मंदिर के महंत हैं। अतः सदैव मेवा-मिठाईयाँ ही खाते होंगे! ऐसा समझकर वह स्वामी के पीछे पीछे चला। स्वामी जब भोजन करने बैठे, तब भंडारी साधु ने स्वामी के पात्र में कुछ परोसा। उस नागर के मन में हुआ कि वह चूरमा होगा, और स्वामी उसमें घी और शक्कर डालेंगे। फिर तो दूध जैसा प्रवाही परोसा गया, तब दूर से देखते हुए उसको हुआ कि यह दूधपाक ही होना चाहिए। उसका संकल्प स्वामी समझ गए और स्वामी ने परोसे हुए भोजन में पानी डाला और थोड़ा नमक-जीरा डाला। यह देखते ही नागर का सारा भ्रम टूट गया और अपनी शंका मिटाने के लिए उसने स्वामी के पास आकर देखा। स्वामी ने कहा, 'भाई, हम तो बाजरे की सूखी रोटियों का चूरा करके उसे छाछ में मिलाकर खाते हैं।'

उस नागर का संदेह तो मिट गया, लेकिन उसे बहुत आश्चर्य हुआ और इसके साथ साथ अंतर्दृष्टि भी हुई कि इतने बड़े मंदिर के महंत होने पर भी स्वामी ऐसा सामान्य खाते हैं, तो मैं स्वाद को किस कारण पोसता हूँ? इसी विचार के साथ वह घर गया। जब भोजन के लिए बैठा तो सारी रसोई ठंडी हो गई थी। परंतु आज उसने बिना कुछ बोले खा लिया! इसे देखकर घरवालों को भी आश्चर्य हुआ। उस दिन से उस नागर भक्त का रसास्वाद सदा के लिए मिट गया।

39. संतों को शिक्षावचन

स्वामी की आज्ञा से संतों के मंडल सोरठ प्रांत में (जूनागढ़ जिले

में) सत्संग प्रवर्तन के लिए विचरण करते थे। स्वामी उनको उपदेश देते हुए कहते कि 'आपने जब त्यागाश्रम की दीक्षा ली, तब उसके वेश की लाज रखनी चाहिए। श्रीजी महाराज ने सत्संग में जो मर्यादा बांधी है, उसका उल्लंधन कभी मत करना! आप जहाँ जहाँ जाएँ, वहाँ कथा-वार्ता करने का आग्रह रखें। हमारा वर्ताव ऐसा होना चाहिए कि जिसे देख हरिभक्त प्रसन्न हो! 'हम उनको उपदेश देने जाते है' ऐसा नहीं मानना। परंतु जिनको श्रीहरि की सर्वोपरि निष्ठा हो, और महाराज की आज्ञा का अक्षुण्ण पालन करते हो ऐसे भक्त जहाँ हो, उनसे तो हमें उपदेश ग्रहण करना चाहिए। ऐसे भक्त फिलहाल कमीगढ़ गाँव के रयो देसाई, हामापर गाँव के करसन बांमणिया, बगसरा गाँव के वेला सथवारा, चाडिया गाँव के राम भंडेरी ये चार हैं, ये सब अत्यंत उच्च कोटि के भक्त हैं। तो उनके दर्शन करना, और उनका सत्संग करना।'

त्यागी-गृही का ऐसा समन्वय और सहृद्‌भाव दृढी़भूत करते हुए स्वामी के उत्तम उपदेश से संतों को बहुत प्रेरणा मिलती। सामान्य मुमुक्षुओं को स्वामी ने कैसे उत्तम भक्त बनाए थे, कि जो त्यागियों के लिए भी प्रेरणा योग्य थे, दर्शनीय थे ! शास्त्र में जो ज्ञान अति दुर्लभ माना गया है, वह ब्रह्मज्ञान स्वामी के संबंध से सब के लिए सरल हो गया था। स्वामी कहा करते थे कि 'हमने दो सौ व्यक्ति को ब्रह्मविद्या सीखाई हैं।'

उपर्युक्त बात का सबूत जूनागढ़ में हरपल मिलता रहता। जैसे कि एक दिन एक हरिभक्त ने स्वामी से पूछा, 'स्वामी, ये जूनागढ़ के संत मंदिर की सेवा में, गाँवों में सत्संग कराने में अपने शरीर की परवाह तक नहीं करते! जब कि ऐसा उत्साह अन्यत्र कहीं दिखने नहीं मिलता।'

स्वामी ने मुस्कुराते हुए कहा, 'प्रत्येक बात में जब गुरु आगे चले तब शिष्य उनका अनुसरण करेगा। यदि गुरु शिथिल होगा तो शिष्य साधनामार्ग में मन क्यों लगाएगा? युद्ध के समय शूरता के ढोल बजते है, बजानेवाला माने यही कहता है कि मरे मोवडी (सेनापति)! अतः युद्ध के समय सेनापति आगे चलेगा, तो ही सारे सैन्य में समर्पित होने की प्रेरणा जाग उठती हैं! उसी प्रकार सत्संग में मोवडी वही होता है, जो सेवा करने में देह की परवाह नहीं करता! उसे देखकर शिष्यों को सेवा करने का बल मिलता हैं।'

स्वामी कहते थे कि 'जब गुरु सोलह आनी (शत प्रतिशत) वर्ताव रखे, तो शिष्य एक आनी (एक प्रतिशत) सदाचारी वर्ताव रखेगा !'

स्वामी सदैव पूजा करने के पश्चात् प्रत्येक संत के आसन पर सबको प्रणाम करने जाते थे। फिर कथा करते। कथा के बाद सबको सेवा सौंपते। अन्यथा जीव का स्वभाव ऐसा है कि कथा में सेवा के विचार करते रहें! स्वामी स्वयं भी सेवा में लग जाते थे। कथा के बाद स्वामी हमेशा बीमार संतों का स्वास्थ्य देखने जाते, तब किसी के पाँव दबाते। किसी के दु:ख में आश्वासन देते। इस प्रकार बीमार संतों की देखभाल तथा सेवा-टहल भी स्वामी स्वयं करते। स्वामी ने सेवा तथा स्वयं परिश्रम करके इस विशाल मंदिर का निर्माण किया था। इस प्रकार स्वामी का जीवन सबके लिए आदर्श उदाहरण था और इससे ही भक्त समुदाय का उत्कर्ष होता था।

40. दरिद्रता मिटाई

राजकोट के सत्संगी युवान मावजी मिस्त्री की आर्थिक परिस्थिति कमज़ोर थी। उन्होंने जूनागढ़ आकर स्वामी से प्रार्थना की। तब दयालु स्वामीश्री ने उनको बाजार से थोड़े चने और मुरमुरे लेकर आने को कहा। मंदिर के बाहर उसका मुसलमान मित्र मुसाभाई मिल गया। उसने भी मावजीभाई को एक आना दिया और कहा, 'तेरे प्रसाद में मेरा भी कुछ हिस्सा रखना!' मावजीभाई तो बाजार से दो आने के चने-मुरमुरे ले आए। स्वामी ने ठाकुरजी को भोग लगाकर उसमें से दो दाने अंगीकार किए। बाकी सबको प्रसाद के रूप में बांट दिया तथा मावजी को प्रसाद दिया। फिर अंतर्यामीरूप से बोले कि 'इसमें से तुम्हारे मित्र मुसाभाई को भी प्रसाद देना।' फिर स्वामी ने उनको करांची जाकर बिल्डींग कोन्ट्राक्टर के व्यवसाय के लिए आशीर्वाद दिए।

मावजी ने कहा, 'स्वामी, वहाँ मेरी कोई पहचान तो है नहीं !'

स्वामी बोले कि 'लेकिन वहाँ मेरी पहचान तो है न !'

मावजीभाई का हौसला इस आशिष से बढ़ गया, परंतु करांची जाने का किराया उसके पास नहीं था। स्वामी ने अंतर्यामीरूप से बताया कि

'तुम्हारी माँ ने चक्की के नीचे जमीन गाड़कर एक सौ एक रुपये रखे हैं वे माँग लेना ! और तेरे धंधे में मुसाभाई का भी कुछ हिस्सा रखना।' मुसाभाई की अल्प सेवा से भी स्वामी राजी हुए थे !

राजकोट जाकर मावजीभाई ने अपनी माँ से पैसे के बारे में पूछा। पहले तो उनकी माँ ने मना कर दी, फिर मावजीभाई ने स्वामी से सुनी हुई सभी बात बताई, तो माँ ने पैसे दे दिए।

मावजीभाई करांची उतरे, बंदरगाह पर ही एक अंग्रेज उनको मिल गया। जो किसी भी प्रकार की बिना पहचान सामने से मावजीभाई को बंदरगाह का बड़ा कोंट्राक्ट देकर चला गया! इस व्यवसाय में मावजीभाई खूब कमाए। और धीरे धीरे 'मावा मुसा की कंपनी' जम गई। इस प्रकार स्वामी के आशीर्वाद से मावजीभाई की द्ररिद्रता मिट गईं। मावजीभाई ने सत्संग की भी बहुत सेवा की।

41. जीव का ऊलटा स्वभाव

स्वामी के सत्संग का ऐसा प्रभाव था कि उनकी वाणी सुनते ही वैराग्य प्रकट हो जाता था। भायावदर गाँव के हंसराजभाई पटेल के पुत्र को ऐसा ही हुआ!

उसका नाम था वस्ता। वह स्वामी का सत्संग करने जूनागढ़ आया करता था। स्वामी की बातों के प्रभाव से उसने दिव्यानंद की अनुभूति की थी। परंतु स्वामी उसको वापस भायावदर भेज देते थे। वह पुनः जूनागढ़ चला आता था। एकबार उसके पिता उसको लेने आए। तब वस्ता ने घर जाने से मना कर दिया और उसने त्यागाश्रम ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की। बात सुनते ही हंसराजभाई झिझक गए। वे यद्यपि निष्ठावान सत्संगी थे, परंतु अपने पुत्र की आसक्ति के कारण उसकी त्यागी होने की बात उन्हें पसंद नहीं आई। अत: उन्होंने वस्ता को स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि 'तुम्हें साधु कभी नहीं होना है। हमारे घर-परिवार की इज्जत पर तुझे कालिमा पोतनी है क्या?' वे वस्ता को जबरदस्ती घर ले आए।

घर में उन्होंने वस्ता के पाँव में जंजीर डाल दी। और एक कमरे में बंद कर दिया। वस्ता तो 'स्वामिनारायण, स्वामिनारायण' भजन करता हुआ

स्वामी को याद करता रहा। अचानक स्वामी वहाँ प्रकट हुए। वस्ता ने स्वामी से विनती की, 'स्वामी, मुझे जूनागढ़ ले चलिए।' स्वामी के प्रताप से वस्ता उसी क्षण निरावरण हो गया, अर्थात् उसको कहीं भी जाने में कोई चीज बाधा नहीं कर सकती थी! वस्ता तो स्वामी के पीछे पीछे चलने लगा। सुबह होते ही वह जूनागढ़ के मंदिर के चौक में आकर खड़ा हो गया! यहाँ उसने स्वामी को प्रत्यक्षरूप में देखा, वह चौक में ही उनको दंडवत् प्रणाम करने लगा। स्वामी ने उसे मंदिर की सेवा में लगा दिया।

सुबह जब हंसराजभाई ने कमरा खोला, तो वस्ता के पांव की जंजीर वैसे ही पड़ी थी, परंतु वस्ता दिखाई नहीं दिया। वे सीधे जूनागढ़ पहुँचे। वहाँ स्वामी ने उन्हें समझाया कि 'वस्ता को भगवान का भजन करने की इच्छा है, तो आप उनको अनुमति दें और आप के तीन पुत्र हैं, तो यह भगवान का भजन करेगा उसके पुण्य का कुछ हिस्सा आपको भी मिलेगा।'

हंसराजभाई का मन इस बात में नहीं माना, उन्होंने कहा, 'उसकी शादी हो चुकी है, समाज में मैं मुँह क्या दिखाऊँगा ?' हंसराजभाई ने इस प्रकार बहुत कारण दिए, बहाने बनाए, किन्तु पुत्र तो जूनागढ़ छोड़ने के लिए कतई तैयार नहीं था! वह तो अपनी बात पर अत्यंत दृढ़ रहा। स्वामी ने पटेल को पुनः पुनः समझाया कि 'यदि वस्ता शरीर छोड़ देगा तो आप क्या करेंगे?' परंतु हंसराजभाई तो उसको घर ले जाना ही चाहते थे।

सुबह तो वे वस्ता को ले जाने को तैयार ही थे, किन्तु न जाने रात को ही क्या हो गया, वस्ता को रात से ही खूब ज़ोरों की बुखार आ गई। कुछ ही पलों में उसने यह नश्वर शरीर छोड़ दिया। हंसराज पटेल फूट फूट कर रोये, उनके पछतावे का पार नहीं था! अपने ही जड़ स्वभाव का फल उनको भुगतना पड़ा।

42. निश्चय कराया

संवत् 1916 में फाल्गुन कृष्णा द्वितीया के दिन जूनागढ़ में रघुवीरजी महाराज द्वारा हरिकृष्ण महाराज की मूर्तिप्रतिष्ठा धूमधाम से हुई। स्वामी महाराजश्री के साथ भावनगर होकर वरताल पधारे। यहाँ हरिनवमी का उत्सव करके सब अणियाळी गाँव पधारे।

रामानंद स्वामी के शिष्य बड़े भायात्मानंद स्वामी यहाँ रहते थे। उनकी उम्र 116 वर्ष की हुई थी। स्वामी के दर्शन से वे खूब खुश हुए। भायात्मानंद स्वामी को एक ही समस्या थी कि 'इतनी बड़ी उम्र हो जाने पर भी मुझे श्रीहरि धाम में क्यों नहीं ले जाते होंगे?' उन्होंने यह समस्या स्वामी के पास रखी। स्वामी ने बताया कि 'शायद आपको महाराज के स्वरूप की यथार्थ महिमा समझने में कोई कसूर होगी।' ऐसा कहकर स्वामी ने उनको 'भगवान स्वामिनारायण सर्वोपरि, सर्व अवतार के अवतारी, पुरुषोत्तम नारायण हैं, और ब्रह्मरूप हुए बिना उनकी भक्ति का संपूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं होता।' ऐसी उपासना संबंधी बातें वचनामृत के आधार पर अत्यंत स्पष्टता से समझाई और कहा कि 'उपासना समझाने हेतु ही श्रीहरि ने आपको अभी तक रखें है।'

स्वामी के वचन से आत्मानंद स्वामी को महाराज का सर्वोपरि निश्चय हुआ और उनको स्वामी की महिमा भी यथार्थरूप में समझ में आई।

वे दोनों सद्‌गुरु जब भोजन करने बैठे, तब स्वामी ने उनके पात्र से प्रसाद माँगा। तब आत्मानंद स्वामी बोले, 'अब से ऊलटी गंगा नहीं बहेगी।' क्योंकि आज तक स्वामी आत्मानंद स्वामी का प्रसाद लेते थे!

स्वामी ने पुनः प्रसाद माँगा तब भायात्मानंद स्वामी ने कहा, 'स्वामी, आज दिन तक मैंने अनजान से आपको मेरे पात्र का प्रसाद दिया, पर आज मुझे आप की यथार्थ महिमा समझ में आई है, अत: मैं वह भूल फिर से नहीं करूँगा !'

इस प्रसंग के बाद कुछ ही दिनों में भायात्मानंद स्वामी ने शरीर छोड़ दिया और अक्षरधाम में श्रीहरि की सेवा में बिराजित हो गए।

43. 'सेवा करे वही महंत'

स्वामी जूनागढ़ पधारे। यहाँ एकबार स्वामी मंदिर का चौक साफ़ कर रहे थे। उसी समय वहाँ तरणेतर के एक मंदिर के महंत आए और चौक साफ़ कर रहे स्वामी से पूछा, 'इस मंदिर के मंहत कौन है?

स्वामी ने नम्रता से कहा कि महंत अंदर बैठे हुए हैं। इतना कहकर स्वामी हाथपाँव धोकर सभागृह में पधारे। जब महंत ने स्वामी को देखते पूछने लगे, 'आप को तो मैंने चौक साफ़ करते देखे थे पर आप तो मंहत हैं!'

स्वामी ने हँसते हुए कहा कि 'हमारे यहाँ तो जो सेवा करता है वही महंत है।' फिर उन्होंने खूँटी पर टाँगी हुई झोली उतारकर बाबाजी को बताई। उन्होंने देखा कि पूजा में तिलक करने का साधन भी काष्ट का था। धातु की वस्तु का तो नामोनिशां नहीं था! पहनने के कपड़े भी मोटे थे। ऐसे निःस्पृही संत देखकर मंहत को आश्चर्य हुआ। स्वामी ने कहा, 'हमने स्त्री-धन का त्याग किया है, इसी कारण महंताई टिकी है।'

स्वामी की बात सुनकर मंहत सोच में पड़ गए और कहने लगे, 'हमारे वहाँ महंताई में तो द्रव्य और पदार्थ की लालच से चेला गुरु को मारकर गद्दी पर चढ़ बैठता है।'

•

स्वामी एकबार अपने संतमंडल और हरिभक्तों के साथ जूनागढ़ से विचरण के लिए निकले थे। स्वामी घोड़े पर सवार थे, अन्य सब पैदल चल रहे थे। तब कुछ कट्टरवादी मुस्लिमों ने सोचा कि इस संघ के मुखिये को मार डाले, ताकि हिन्दु लोग उनका भजन करना बंद कर दे! मलिन आशय से वे संघ में घुस गए। एक-दो संत से पूछ भी लिया: 'तुम्हारे में बड़ा कौन है ?'



संतों ने उनके आशय को समझे बिना बता दिया कि जो घोड़े पर बैठे हैं, वही हम सब के गुरु है! मुस्लिमों ने जाकर स्वामी के घोड़े की लगाम पकड़ ली और पूछा कि 'क्या तुम बड़े हो ?'

स्वामी ने सहजभाव से कहा कि 'बड़े तो एक खुदाताला है ! और मैं तो उनका दास हूँ।' यह सुनते ही मस्लिमों के भीतर एक झटका सा लगा कि यह साधु तो खुदाताला को बड़े मानते हैं! अतः जरूर यह कोई बड़े ओलिए पुरुष होंगे! इस प्रकार द्वेषियों का द्वेष भी सद्भाव में पलट गया, और मुस्लिम स्वामी को भाव से नमस्कार करके चल दिए।

•

संवत् 1917 में रघुवीरजी महाराज स्वामी की आज्ञा अनुसार तीर्थवासी होकर जूनागढ़ स्वामी का समागम करने पधारे। आचार्यपद के पूरे रियासती ठाट को छोड़कर सिर्फ एक सेवक ही साथ रखते। सुबह उठकर हमेशा नित्यविधि के बाद कथा में बैठे जाते! स्वामी भी उनकी मुमुक्षता देखकर आत्मा-परमात्मा की अद्भुत बातें करते। रघुवीरजी महाराज कथा के बाद मात्र खिचड़ी बनाकर खा लेते और कथा में बैठ जाते! इस तरह देह का आदर संपूर्णतः छोड़ दिया। स्वामी को पता चला कि आचार्य महाराज बराबर भोजन नहीं करते हैं तब वे स्वयं उनके निवास पर बातें करने आ जाते। श्रीहरि ने भी सभी तरह का मान-सम्मान छोड़कर एकांतिक भाव से मुमुक्षु होकर स्वामी का समागम किया तो उनकी सभी अहं-ममत्व आदि ग्रंथियाँ पीधल गई और गुणातीत के संग से वे भी गुणातीत हो गए।

44. सोरठ का सत्संग

स्वामी महाराजश्री के साथ सोरठ प्रदेश में विचरण करने लगे। एक दिन रास्ते में रघुवीरिजी महाराज की गाड़ी का एक बैल लँगड़ा हो गया। महाराज ने पार्षदों को पास के गाँव में बैल लाने के लिए भेजा। वहाँ पटेल लोगों ने रघुवीरजी के नाम पर बैल देने का साफ़ इन्कार कर दिया। किन्तु जब पार्षदों ने स्वामी का नाम दिया तो लोग तुरन्त अपने अच्छे से अच्छे बैल की जोड़ी लेकर स्वामी के पास आ गए तथा बैल को स्वामी की सेवा में समर्पित किया। स्वामी ने कहा, 'हम तो दूसरे गाँव पहुँचकर

आपके बैल आपको लौटा देंगे। इसे कृष्णार्पण करने की कोई आवश्यकता नहीं है !' किन्तु भाविक लोगों ने कहा कि नहीं, आपकी गाड़ी पर जुड़ा गया बैल हम किसी भी प्रकार के उपयोग में नहीं ले सकते! उस बैल पर हमारा अधिकार नहीं हो सकता! आचार्य महाराजश्री ने इन भक्तों के भाव को देखकर स्वामी से कहा कि, 'जिन्हें सत्संग की दृढ़ता भी नहीं है, वे भी इतना समर्पण करते हैं, तो सत्संगी तो क्या क्या समर्पित नहीं करेंगें !'

स्वामी यह सुनकर हँसने लगे और कहा, 'महाराज, जूनागढ़ की इस खेंगार बाबड़ी है, वह सोरठ के सत्संगियों के सिर से भरनी है तो भर दूँ, ऐसा सत्संग सबको समझाया है!' महाराजश्री यह सुनते ही चकित रह गए!

स्वामी ने जूनागढ़ में कथावार्ता का अखाड़ा जमाया था। एक बार स्वामी ने कहा कि आज सत्संग में यह बात हो रही है कि 'जीव ब्रह्मरूप हो जाता है।' यह सुनकर जागा भक्त ने पूछा कि जीव ब्रह्मरूप क्यों नहीं होता है ? तब स्वामी ने कहा कि 'सत्पुरुष के साथ स्नेहभाव से जीव जुड़ा नहीं है!' यदि स्नेह हो भी गया, तो उनके वचन में विश्वास नहीं होता ! यदि विश्वास भी हो, लेकिन निष्कपट भाव से उनके साथ वर्ताव नहीं हो सकता। स्नेह, विश्वास और निष्कपटभाव तीनों की दृढ़ता हो तो जीव ब्रह्मरूप हुए बिना कैसे रह सकता?' फिर जागा भक्त ने पूछा कि सत्पुरुष के साथ स्नेह होते हुए भी विश्वास न हो, वह कैसे?' स्वामी ने कहा, 'यह जो जला भक्त है, उसको हमारे स्वरूप में स्नेह तो है, लेकिन विश्वास नहीं है, अतः हम जो कहेंगे, उस प्रकार वह करेगा नहीं!'

एक बार रघुवीरजी महाराज ने चुहुल करते हुए जलाभक्त से कहा कि 'गुणातीतानंद स्वामी को अब वरताल में ही रखना है।' तो जला भक्त सिसक-सिसक कर रोने लगा। परंतु वह यदि झाड़ू लेकर मंदिर में सेवा कर रहा हो और स्वामी उसे कहे कि 'यह रखकर भजन करो !' तो वह स्वामी का वचन नहीं मानेगा। इस प्रकार सत्पुरुष के वचन में विश्वास रखना बहुत कठिन है।

45. तुलसी दवे को समाधि

संवत् 1918 में चैत्री पूर्णिमा का उत्सव वरताल में करके स्वामी बोटाद पधारे। यहाँ उन्होंने मंदिर में तुलसी दवे की कथा सुनी। सुनकर

स्वामी प्रसन्न हुए और कृपादृष्टि करके उसे जूनागढ़ आने की आज्ञा दी। जूनागढ़ जाते रास्ते में उनको एक हरिभक्त ने पूछा, 'तुलसी ! क्या कुछ दिव्य अनुभव होता है?'

तुलसी ने कहा, 'मैं जब बोटाद में था और जिस प्रकार के संक्ल्प होते थे, वे सब मिट गए हैं और अंतर में आनंद की अनुभूति रहती है।'

जूनागढ़ पहुँचने के बाद तुलसी दवे ने स्वामी से पूछा, 'स्वामी ! क्या मुझे आप अष्टांग योग सिद्ध न करायेंगे?'

स्वामी ने हँसकर कहा, 'अष्टांगयोग का फल समाधि है, तो जाओ आज से आपको समाधि होगी।'

दूसरे दिन स्वामी ने उनको ध्यान में बिठाया। स्वामी की कृपादृष्टि से उनको तुरंत समाधि हुई। समाधि की स्थिति में पहले उनको षट्चक्र दिखाई दिए। फिर ब्रह्मरंध्र से अर्चिमार्ग अर्थात् प्रकाश के मार्ग द्वारा उन्होंने स्वामी के साथ गति की, और प्रकृतिपुरुष का लोक देखा।

वहाँ से स्वामी के दिव्य प्रकाशमय रूप के साथ जाते हुए अक्षरधाम में दिव्य सिंहासन पर महाराज को बिराजमान देखे। उनके आसपास अनंतकोटि मुक्त बैठे थे। पर उन्हें मुक्तों की पहचान नहीं हुई। फिर महाराज की कृपा से उनको बोटाद के शिवलाल सेठ, रघुवीरजी महाराज और गोपालानंद स्वामी के असली रूप में दर्शन हुए। वे महाराज के सिंहासन के तीसरे दादर के पास जाकर खड़े रहे।

महाराज की इच्छा से उन्हों ने महाराज से छः प्रश्न पूछे।

महाराज ने सभी प्रश्नों के उत्तर में उनको कुछ न कुछ दिव्य अनुभूति कराई। उन्होंने सातवां प्रश्न पूछा, 'महाराज, गुणातीतानंद स्वामी को सब अक्षर कहते हैं, उसका क्या समझें?' महाराज ने पूछा, 'क्या आपको वह भी देखना है?' तुलसी दवे ने 'हाँ' कही तो महाराज की इच्छा से उन्होंने देखा कि स्वामी की मूर्ति में से ऐसा अपार तेज उत्पन्न हुआ, कि मानो वही तेज धामरूप होकर महाराज और सभी भक्तों को धारण न करता हो! तुलसी ने देखा कि स्वामी महाराज की सेवा में साकाररूप से उपस्थित हैं! इस प्रकार उनको स्वामी के स्वरूप की यथार्थ प्रतीति हुई।

समाधि से जागृत होते ही तुलसी दवे का देहभाव मिट गया! और

उनकी स्थिति निरावरण हो गई। उनको कमरे में बंद कर देते, तो बिना कुछ साधन वे बाहर निकल जाते थे। इस प्रकार बारह माह तक उनकी ऐसी स्थिति रही। बोटाद के भगा दोशी ने उनको बोटाद बुलवा लिए, तब स्वामी की दृष्टि न रही।

इस प्रकार योगियों को भी दुर्लभ ऐसी समाधि का अनुभव स्वामी ने अपने भक्तों को करवाया था।

46. प्रागजी भक्त

महुवा के प्रागजी भक्त ने गोपालानंद स्वामी का तेरह वर्ष तक अनुवृत्ति पालन करके सेवा-सत्संग किया था। आखिर गोपालानंद स्वामी ने उनसे कहा कि 'प्रागजी, तू जूनागढ़ जा, मैंने तुझे जो आशीर्वाद दिए हैं उन सब की पूर्ति जूनागढ़ के जोगी करेंगे।'

एकबार सारंगपुर में स्वामी ने प्रागजी भक्त से कहा, 'प्रागजी, हम इतने समय तक तो ज्ञान संपादन ही करते रहे थे, लेकिन अब तो कोई उत्कृष्ट श्रद्धावान् मुमुक्षु मिल जाए तो पूरा ज्ञान उसीको देना चाहते हैं !'

प्रागजी भक्त ने नम्रतापूर्वक कहा, 'स्वामी, वह ज्ञान आप मुझे प्रदान करें! मैं उस ज्ञान का सर्वत्र प्रवर्तन करूँगा!'

परंतु ऐसा मायातीत ज्ञान प्राप्त करके, अक्षरब्रह्म के साधर्म्य को सिद्ध करना कोई आसान काम नहीं था। अतः स्वामी ने थोड़े गंभीर होकर कहा, 'इस ज्ञान की प्राप्ति तो संसार छोड़कर हमारे स्वरूप में जी जोड़कर देह-इन्द्रियों को चूर-चूर कर देंगे तब होगी।'

प्रागजी भक्त ने स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य की।

इस अरसे में स्वामी ने उनको नौ दिन तक अखंड ध्यान में बिठाकर परब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार कराया और अपने स्वरूप के साथ एकता कराई। प्रागजी भक्त ने साढ़े तीन वर्ष तक धर्मशाला, हवेली, मंदिर आदि की सेवा में अपने देह की परवाह तक नहीं की थी। निम्नस्तर की सेवा भी उन्हों ने बड़े प्रेमभाव से की। इस के साथ धारणा-पारणा व्रत (एक दिन भोजन और दूसरे दिन निर्जल उपवास) तथा कथावार्ता की भी उनको इतनी ही लगन थी। इस प्रकार गुरु की मर्जी के अनुसार की गई उनकी

सेवा देखकर स्वामी कहते थे कि 'प्रागजी! तू तो मेरा अंतर्यामी हुआ है।'

स्वामी की कृपा से वे अनन्य अध्यात्मिक बल के धनी हुए थे। नयी हवेली के निर्माण में उन्हें पांव से चूना कुचलते हुए देखकर कई लोग कहा करते थे कि 'अरे प्रागजी ! इस चूने की गर्मी के कारण तू अंधा हो जाएगा!' तब वे हँसते हुए मात्र इतना ही कहते कि 'गुणातीतानंद स्वामी पर मेरी देह कुरबान है।'

जूनागढ़ में श्रावण माह की पूर्णिमा के उत्सव बाद स्वामी ने सभा में आदेश दिया कि 'अब तो हमने निवृत्ति ली है, और हमने प्रागजी को उपदेश देने का अधिकार सौंपा है। श्रीजी महाराज ने हमको जो अक्षरधाम की कुंजी दी है, वह हमने अब प्रागजी को दे दी है।' ऐसा कहकर तमाम त्यागी-गृहस्थों को आदेश दिया कि 'सब प्रागजी की बातें सुनना।' इस आदेश से ही हल्ला मच गया कि स्वामी प्रागजी भक्त के वश हो गए हैं और अपना ज्ञान, ऐश्वर्य, तथा कुंजियाँ भी उनको दे दी हैं।' इस प्रसंग से सत्संग में कुछ उपाधि का प्रारंभ हो चुका था।

जागा भक्त भी स्वामी के अत्यंत कृपापात्र शिष्य थे। वे भी गोपालानंद स्वामी की आज्ञा से अनेकों के साथ संबंध छोड़कर, जूनागढ़ आकर स्वामी के सत्संग में रहे। स्वामी के आदेशों का पालन किया, उनकी अत्यंत प्रसन्नता पाकर तत्स्वरूप सेवक बने थे। स्वामी के दूसरे कृपापात्र शिष्यों में स्वामी बालमुकुंददासजी, स्वामी योगेश्वरदासजी, स्वामी माधवचरणदासजी, स्वामी माधवप्रियदासजी, ब्रह्मचारी अचिन्त्यानंदजी आदि संतों तथा बोटाद के शिवलाल सेठ, कारियाणी के नथू पटेल, वसो के वाघजीभाई, सारंगपुर के जेठा खाचर, मनजी ठक्कर आदि हरिभक्त भी थे।

47. 'संत पारस चंदन बावना'

सारंगपुर के वाघाखाचर सूर्य के अवतार कहलाते थे, और वे प्राय: श्रीहरि के साथ रहते थे। स्वामी सारंगपुर उनके घर पधारे, तब उन्होंने स्वामी से प्रश्न पूछा, 'स्वामी! श्रीहरि ने वचनामृत में बताया है कि भगवान का ध्यान और वचन, इन दो के बिना कारण शरीररूप मूल अज्ञान मिटना असंभव है। मैंने तो बड़े बड़े साधुओं का सत्संग किया है। फिर भी मुझे

रात में स्वप्न में ऐसा दिखता है कि मानो मैं महायुद्ध में लड़ रहा हूँ, और मेरे हाथ-पांव कट गए हैं। ऐसा वह स्वप्नरूपी शरीर के भाव आज भी मिटे नहीं है, तो फिर कारण शरीर के भाव कब मिटेंगे? और कारण शरीर के भाव मिटे बिना मैं अक्षरधाम में किस प्रकार जाऊँगा?'

तब स्वामी ने हँसते हुए जवाब दिया, 'वाघाखाचर! यदि आपको सूक्ष्म और कारण शरीर के भावों को मिटाने हैं तो आप जूनागढ़ आईए। वहाँ पर सारे देहभाव हम मिटा देंगे।'

फिर वाघाखाचर स्वामी के साथ जूनागढ़ गए। स्वामी ने उनको अपने स्वरूप का निश्चय करवाकर उनके सूक्ष्म और कारण शरीर के सब भाव मिटा दिए। वाघाखाचर को सषुप्ति अवस्था मिट गई। अपने भीतर सच्चिदानंद ब्रह्म के आनंद की अनुभूति निरंतर होने लगी।

वरताल में धर्मस्वरूपानंद ब्रह्मचारी श्रीहरि के समकालीन संत थे। एकबार स्वामी जूनागढ़ से वरताल पधारे। उन्होंने स्वामी की महत्ता जानकर स्वामी से हाथ जोड़ कर विनती की, 'स्वामी, मुझे रसास्वाद परेशान नहीं करता, परंतु दूसरे दोष परेशान करते हैं। अतः वे सब मिट जाएँ ऐसी कृपा करें।'

तब स्वामी ने हँसकर कहा, 'साधु के तीस लक्षण में से एक लक्षण आपने सिद्ध किया है और बाक़ी के उनतीस लक्षण आप जूनागढ़ आईए तो मैं पूर्ण कर दूँगा!' गुणातीतपुरुष के सिवा ऐसा कौन कह सकता है!

जो निर्दोष हो वही दूसरों को निर्दोष कर सकते हैं। स्वामी के संबंध से धर्मस्वरूपानंदजी भी दोष रहित हो गए। इस प्रकार अपने संबंध मात्र से शरणागत जीवों के दोष निर्मूल करके ब्रह्मरूप करने की अक्षरब्रह्म की शक्ति का अनुभव स्वामी सबको कराते थे।

ऐसे ही एक हरिभक्त अहमदाबाद के पीतांबरदास भी थे। वे पहले सुरत में कलक्टर कचहरी में अच्छे पद पर अधिकारी थे। और रजोगुणी तथा अच्छे अच्छे कपड़े पहनने के शौकीन थे। ईत्र छांटना, रोज के बीस-पच्चीस पान खाना आदि शौक उड़ाना उनका स्वभाव था ! परंतु स्वामी एकबार सुरत पधारे थे, तब स्वामी की बातें सुनकर उनको चोट लगी और स्वामी के सत्संग में रहकर, निर्वासनिक बनकर ब्रह्मस्थिति प्राप्त करने की उनके मन में प्रबल इच्छा प्रकट हुई। उन्होंने स्वामी से बताया कि मुझे भी

ब्रह्मदशा प्राप्त करनी हैं। स्वामी ने प्रसन्न होकर कहा कि 'तुम्हारी यह वेश्या जैसी तो वेशभूषा है और तुम रजोगुण की तो सक्षात् मूर्ति हो ! तुम मेरे सत्संग का लाभ कैसे ले सकेंगे?' लेकिन पीतांबरदास की मुमुक्षुता अचल रही। उन्होंने स्वामी से बहुत प्रार्थना की, फिर स्वामी ने उनको जूनागढ़ आने को कहा।

वे नौकरी छोड़कर स्वामी के साथ जूनागढ़ पहुँच गए। यहाँ स्वामी ब्रह्मरूप होने की अद्‌भुत बातें, पीतांबरदास को ही लक्ष्य करके कहने लगे। बार बार उनको याद करते, प्रसादी देते, इस प्रकार स्वामी के प्रति उनका स्नेह बढ़ता चला। अब पीतांबरदास की वृत्ति स्वामी के स्वरूप में ही एकाग्र हो गई। और स्वामी के सत्संग से धीरे धीरे उनके जीवन में परिवर्तन आने लगा। इस प्रकार स्वामी ने उनको ब्रह्मस्थिति का अनुभव कराया। स्वामी के अक्षरधाम-गमन के बाद वे अहमदाबाद में निवास करते थे। और मंदिर में गुणातीत ज्ञान की अद्‌भुत बातें किया करते थे। अयोध्याप्रसादजी महाराज ने उनकी स्थिति पहचान कर उनको त्यागी होने का आदेश दिया। उन्होंने तुरन्त भागवती दीक्षा ग्रहण की और विज्ञानदासजी नाम से प्रख्यात हुए। स्वामी की कृपा से वे अहमदाबाद मंदिर में रहकर अविरत कथावार्ता करके सबको सुखी करते रहे।

48. 'मान अपमान में एकता'

संवत् 1922 की साल में चैत्रीपूर्णिमा के उत्सव पर स्वामी वरताल पधारे। 'स्वामी अक्षरब्रह्म के अवतार हैं' इस बात का प्रचार स्वामी की इच्छा से प्रागजी भक्त ने शुरू किया था। यह सिद्धांत यद्यपि सत्य था, कई लोग इसे पसंद नहीं करते थे। इसलिए इस उत्सव पर स्वामी को उलाहना देने का उन लोगों ने विचार किया था।

पूर्णिमा के दिन प्रात:सभा में शुकमुनि के शिष्य हरिस्वरूपदासजी के चढ़ाने से गढ़डा के करुणानंद ब्रह्मचारी ने सभा में कहा कि 'ये गुणातीतानंद स्वामी भगवान हुए हैं, भगवान की तरह वे पूजे जाते हैं, फिर भी उनको क्यों कुछ नहीं कहा जाता है?'

तब शुकमुनि ने कहा कि 'मुझे कोई शुकजी न कहे और

गुणातीतानंद स्वामी को सब 'अक्षर' कहते हैं तो आज से कोई उनको 'अक्षर' न कहें!'

स्वामी इस अपमान को सुनते हुए भी स्वस्थचित्त से, स्थितप्रज्ञ अवस्था में विराजमान थे। फिर स्वामी ने धीर-गंभीर स्वर से कहा कि 'भगवान तो एक श्रीजीमहाराज हैं, इनके सिवा दूसरे कोई भगवान हो ही नहीं सकते। हम तो साधु हैं। परंतु जितने में राजा का राज्य उतने में रानी का राज्य होता है। जितना हुक्म राजा का चलता है, उतना ही राणी का हुक्म भी चलता है। ठीक उसी प्रकार भगवान का जितना प्रताप, वैसा ही साधु का भी प्रताप होता है।'

यह सुनकर कोई कुछ नहीं बोल सके। सींजीवाड़ा के प्रभुदास बारोट ने खड़े होकर सभा में कहा कि 'स्वामी को इस प्रकार कहने की क्या किसीकी कोई लायकात है?' अभी वे बोल ही रहे थे कि कोई जाकर आचार्य भगवत्प्रसादजी महाराज को बुला ले आया और श्रृंगार आरती का डंका बजा। सबको आरती में जाना पड़ा। स्वामी आचार्य महाराज के साथ मंदिर में दर्शन करने पधारे। जब स्वामी दर्शन करके मंदिर की सीढ़ियाँ ऊतर रहे थे। सामने ही एक माली गुलाब के हार और गजरा लेकर खड़ा था।

रघुवीरजी महाराज की आज्ञा से माली ने गुलाब का हार स्वामी को पहनाया। वे अपने निवास पर पधारे, स्वामी भी साधुओं की धर्मशाला की ओर जा रहे थे, उसी समय सामने शुकमुनि के शिष्य हरिस्वरूपदास मिल गए! वही इस अपमान की घटना के पीछे सूत्रधार की भूमिका में थे। स्वामी ने यह जानते हुए भी अपने गले से हार उतारकर उनको अर्पण कर दिया और बोले,

'हलदी जर्दी नव तजे, षटरस तजे न आम,
गुणीजन गुणकुं नव तजे, अवगुण न तजे गुलाम।'

ऐसा कहकर स्वामी आगे चलने लगे।

अद्‌भुतानंद स्वामी, शुकस्वामी तथा पवित्रानंद स्वामी आदि ने स्वामी को अपने आसन पर बुलाकर स्वामी की पूजा की और धोती आदि कुछ भेंट समर्पित की। सक्कर का दूना चरणों में रखकर सब बोलने लगे, 'स्वामी! हमारी गलती माफ करना।' ऐसा कहकर स्वामी की क्षमा माँगी।

मान-अपमान की ऐसी स्थिति में भी स्वामी की स्थितप्रज्ञता देखकर

सद्गुरुओं को यह प्रतीत हुआ कि स्वामी स्वयं साक्षात् गुणातीत ही है! यह बिलकुल नि:संशय है! सबके भीतर इस घटना के बाद पूरा पछतावा हुआ।

वरताल से बिदा होकर स्वामी महेलाव पधारे। यहाँ छोटे से डुंगर भक्त (स्वामीश्री यज्ञपुरुषदास – शास्त्रीजी महाराज) को आशीर्वाद दिए फिर जूनागढ़ आकर सोरठ इलाके में विचरण का प्रारंभ कर दिया।

49. अहमदाबाद में सम्मान

संवत् 1923 में श्रीहरिजयंती के उत्सव पर स्वामी वरताल के लिए चले। अहमदाबाद के समाचार रास्ते में ही मिले कि अयोध्याप्रसादजी महाराज बीमार हैं और उनको अत्यंत अशांति रहती है। अत: वे स्वामी के दर्शन आशीर्वाद को खास चाहते हैं।

उन्होंने हाथी तथा गाड़ी के साथ संतों, हरिभक्तों एवं केशवप्रसादजी महाराज को भी सामने स्वागत के लिए भेजे। धूमधाम से स्वागत के साथ स्वामी मंदिर पधारे। दर्शन करके स्वामी अयोध्याप्रसाजी महाराज को मिलने पधारे। स्वामी के दर्शन से ही आचार्य महाराज के अंतर में शांति की अनुभूति हो गई। स्वामी की आज्ञा से महाराज ने भोजन लिया। फिर आचार्य महाराज ने आग्रह करके हरिजयंती का उत्सव अहमदाबाद करने के लिए स्वामी से भावपूर्ण निवेदन किया।

उत्सव सभा में स्वामी ने श्रीहरि के सर्वोपरिस्वरूप की अद्भुत बातें कही। अहमदाबाद प्रदेश के संतगण एवं केशवप्रसादजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए। स्वामी ने केशवप्रसादजी महाराज को रजोगुणी वर्ताव को छोड़कर आचार्य के धर्म के अनुसार रहने की प्रेरणा और आदेश दिया। केशवप्रसादजी महाराज ने सादगीपूर्ण जीवन बीताने का संकल्प किया।

दूसरे दिन आचार्य महाराज के भावपूर्ण निमंत्रण से स्वामी जूनागढ़ के संतों के साथ उनके निवास पर भोजन करने पधारे। महाराजश्री ने स्वामी के समक्ष चांदी का थाल रखा। तुरंत स्वामी ने काष्ठ का अपना भोजनपात्र सेवक से माँगा। स्वामी बालमुकुंददासजी पात्र लेकर उपस्थित हुए। इसे देखकर महाराजश्री हाथ जोड़कर बोले, 'स्वामी! आज तो मेरी आप से प्रार्थना है कि आप इस चांदी के थाल में ही भोजन करें।' ऐसा

कहकर सौगंध दी।

किन्तु स्वामी टस से मस न हुए और कहा, 'हमें श्रीहरि की आज्ञा नहीं है, इसलिए हम इस थाल में भोजन नहीं कर सकते।'

'स्वामी! आपको तो कचरा और कंचन दोनों एक समान हैं। मेरी आपसे विनंती है कि आप इस थाल में भोजन लीजिए।'

उनकी बात सुनकर स्वामी हँसे और बोले, 'आपकी वह समझ ठीक ही है, किन्तु हमें श्रीहरि की आज्ञा है, हम चांदी और काष्ठ दोनों को कचरा ही समझते हैं, फिर भी काष्ठरूपी कचरे का ही उपयोग कर सकते हैं, लेकिन चांदी रूपी कचरे का त्याग ही रखना यह हमारा नियम हैं। अतः हम इस थाल का उपयोग तो भोजन के लिए कतई नहीं करेंगे!' आखिर उनका मन रखने के लिए स्वामी ने थाल में काष्ठ का पात्र रखावाकर उसमें भोजन लिया।

अयोध्याप्रसादजी ने विविध प्रकार के भोजन तैयार करवाये थे और सौगंध देते हुए परोसने लगे थे किन्तु स्वामी ने उनमें से कुछ न लिया, केवल सादा भोजन किया। बालमुकुंद स्वामी ने पहले से बाजरे का सोगरा तैयार रखा था, वह सोगरा और मुंगदाल ही अंगीकार करके स्वामी उठ गए।

इस प्रकार, उनके शुभ संकल्प पूर्ण करके, उनको शांति प्रदान करके स्वामी वरताल पधारे। चैत्री पूर्णिमा का उत्सव वरताल में मनाया। फिर वरताल के आचार्य और संतों के साथ स्वामी अहमदाबाद पधारे। यहाँ से विचरण करते हुए स्वामी ने जूनागढ़ आकर निवास किया।

50. अंतिम लीला

इस प्रकार श्रीहरि ने एकांतिक धर्म का प्रवर्तन का जो विराट कार्य प्रारंभ किया था, उसे स्वामी ने अत्यधिक सुदृढ़ किया। श्रीहरि के पूर्ण पुरुषोत्तम के स्वरूप की पहचान स्वामी ने सबको कराई। तथा कई संत-हरिभक्तों को अपने मूल अक्षरब्रह्म स्वरूप की पहचान कराकर एकांतिक स्थिति भी स्वामी ने दृढ़ कराई। चालीस वर्ष तक स्वामी जूनागढ़ मंदिर में रहे। इसके दरम्यान रात-दिन कथा-वार्ता की। अपने संबंध में आनेवाले असंख्य मुमुक्षुओं को एकांतिक धर्म सिद्ध कराकर अक्षरधाम के अधिकारी बनाए।

श्रीहरि के साथ इस पृथ्वी पर पधारने का अपना उद्देश्य पूर्ण हुआ था। अक्षर और पुरुषोत्तम के शुद्ध स्वरूप को सबने पहचान लिया था। इन स्वरूपों की उपासना का विस्तार बाद में होगा, ऐसा विचार करके स्वामी ने अक्षरधाम में पधारने का संकल्प किया।

संवत् 1923 में[5] भादो वदी तीज के दिन सुबह स्वामी नित्यक्रम के बाद ठाकुरजी के दर्शन करके सभा में पधारे। सबको ककड़ी का प्रसाद वितरित किया। सब संतों-हरिभक्तों को मिले। घोड़ी पर बिराजमान होकर मुख्यद्वार की और देखकर बोले, 'श्रीजीमहाराज ने यह मंदिर हमको सौंपा था। तब से आज दिन तक अर्थात् चालीस वर्ष, चार मास और चार दिन तक हमने इसकी देखभाल की और हम यहीं रहे, अब तो सत्संग में फिरेंगे और महुवा जाकर रहेंगे।' ऐसा कहकर चलें।

महुवा में उनके लाड़ले भक्त प्रागजी भक्त रहते थे। उनके द्वारा अब स्वामी सत्संग में प्रकट रहेंगे, ऐसा निर्देश देने के लिए ही स्वामी ने 'महुवा जाकर रहना हैं।' ऐसा उच्चार किया।

वंथली गाँव के रास्ते पर चलते चलते स्वामी बोले, 'हम जब कभी इस रास्ते से निकलते हैं, तब हमें श्रीजी महाराज की याद आती हैं।'

काशीराम ने तुरंत कहा, 'जिसने महाराज के दर्शन किए हो उसको याद आए, दूसरों को कहाँ से याद आए?' स्वामी ने कहा, 'हमारे लिए वे परोक्ष कहाँ है? देखिए, इन संत के द्वारा वे प्रत्यक्ष ही हैं। वे दर्शन देते हैं। इस प्रकार से वे हमें सुख देते हैं। पर जब तक अज्ञान है, तब तक हम उन्हें पहचान नहीं पाते। किन्तु वही श्रीहरि संत के द्वारा हमें बातें करते हैं और कृपादृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार स्वामी ने बातें करके सबको आनंद कराया और सबको धैर्य दिया।

वंथली में कल्याणभाई के घर स्वामी ने निवास किया। वहाँ देवजीभाई ने लंबे समय से विचार करके एक प्रश्न तैयार रखा था। जो स्वामी से पूछा कि 'स्वामी, अक्षर कैसे होंगे ?'

तब स्वामी बोले, 'ये तेरे घर में बठे हैं, वही अक्षर हैं!'

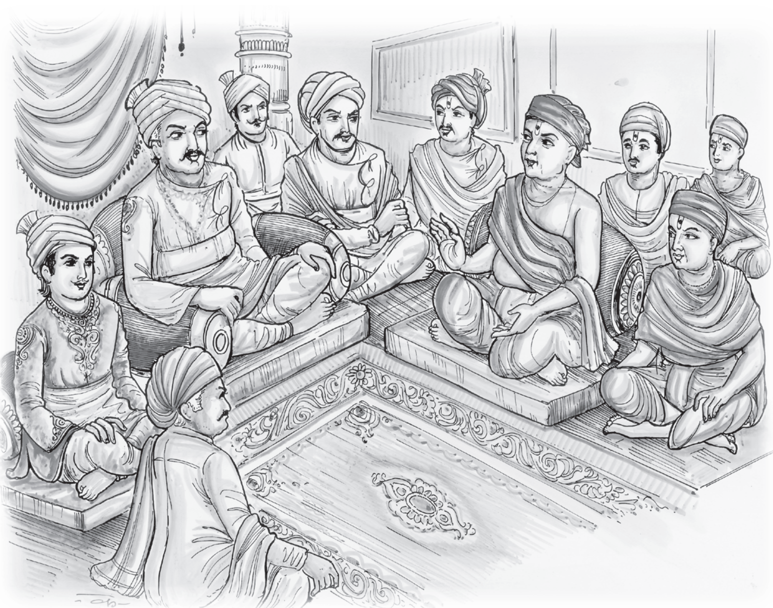
गणोद, उपलेटा, भायावदर आदि गाँवों में स्वामी ने सबको लाभ

5. आ. सं. 1924

दिया। गोंडल के कारभारी माधवजी दवे स्वामी को निमंत्रित करने आ पहुँचे, अतः स्वामी आसो सुदी नौंवी के दिन गोंडल पधारे।

गोंडल में स्वामी ने विजयादशमी का उत्सव किया। महल में महाराजा ने स्वामी की धूमधाम से पधरावनी करवायी। गणोद के अभयसिंहजी ने भी अपने महल में स्वामी की पधरावनी करवाई। फिर जूनागढ़ में राधारमण देव के थाल के लिए भूमिदान करके उसका दस्तावेज अपने कुंवर के द्वारा स्वामी के पास अर्पण करवाया। अपने पुत्र कुंवर भगवत्‌सिंहजी ने जब स्वामी को प्रणाम किया, तब स्वामी ने प्रसन्न होकर कुंवर को आशीर्वाद दिए कि 'ये भगवान के दिए हुए पुत्र हैं, इसलिए उनका नाम हमने भगवत्‌सिंहजी रखा है।' फिर उपदेश की कई बातें करके रात नौ बजे मंदिर पधारे। माधवजी दवे ने दूसरे दिन पधरावनी कराने के लिए स्वामी से कहा, 'स्वामी, कल मेरे घर पधरावनी करानी है।'

स्वामी ने कहा, 'कल किसने देखी हैं? आज ही पधरावनी कर लें।' स्वामी ने उसी रात पधरावनी की। फिर स्वामी मंदिर आए।



नियम–चेष्टा का गान करके स्वामी स्वस्तिक आसन में ठाकुरजी के सिंहासन के पास खंभे को टेककर बिराजमान हुए। रात को ठीक बारह बज कर पिस्तालीस मिनट पर स्वामी स्वतंत्ररूप से अपने ब्रह्मधाम में सिधार गए।[6]

●

6. स्वामी के दिव्य विग्रह को एक सुन्दर पालकी में विराजित करके षोडशोपचार से पूजा करके गाँव के बाहर गोंडली नदी के तट पर लाया गया। यहाँ पर अग्निदाह दिया गया। स्वामी की देह पंचमहाभूत में विलीन हुई। इसी स्थान पर विमान आकार की एक सुंदर देहरी की रचना की गई है। जो 'अक्षरदेरी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। करीबन 50 साल के बाद स्वामीश्री शास्त्रीजी महाराज ने इस देहरी को यथावत् रखकर उसके उपर त्रिशखरीय मंदिर का निर्माण करवाया है। जो आज अक्षरमंदिर नाम से प्रसिद्ध है। जिस में गुणातीतानंद स्वामी और श्रीजी महाराज अर्थात् अक्षर और पुरुषोत्तम की पंचधातु की प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई हैं। ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज ने इस स्थान की महिमा सर्वत्र फैलाकर बहुत बड़ी सेवा की है।